श्री काशी खण्ड

अध्याय ६१ से ६४

विष्णु के स्थान श्री विश्वनाथ काशी में



लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

॥ ॐ शिवाय नमः ॥



असितगिरि समम् स्यात् कज्जलम् सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्र मुर्वी
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तवगुणानामीश पारंययाति ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवैः
वेदैः सांग पदक्रमोप निषदैः गायान्ति यम् सामगाः
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो
यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः

श्री काशी-खण्ड

अध्याय ६१ से ६४

विष्णु के स्थान
श्री विश्वनाथ काशी में

लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

प्रकाशक :—
श्री भृगुप्रकाशन
के. ४३/६३ बंगाली बाड़ा
विश्वेश्वरगंज,
वाराणसी।

मुद्रक :—
विष्णु प्रेस
कतुआपुरा
वाराणसी।

मूल्य २) रु०
'महाशिवरात्रि' शनिवार, सं० २०३२

हर ! हर ! हर ! महादेव !



बाबा 'विश्वनाथ' के प्रतीक, काशिराज महाराज

श्री विभूतिनारायण सिंहजी

को

सादर समर्पित



काशी के गौरव वेदमूर्ति

विद्वच्छिरोमणि शास्त्ररत्नाकर वाचस्पति पद्मभूषण

पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़

आमुख

गुरु-सेवा और देव-सेवा करते हुए विवेक व श्रुतिमार्ग में डटे रहना ही सब प्रकार की उन्नति का साधन है। यह बात काशी खण्ड के प्रस्तुत सप्तदश भाग में अच्छी प्रकार से मिलती है।

'जैगीषव्य महर्षि' इसी साधन को अपनाकर 'योगाचार्य' बन गये। इन सब बातों से यही प्रमाणित होता है कि "यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ तस्येतेऽकथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्त महात्मनः" इस श्रुति वचन के अनुसार जैगीषव्य ऋषि ने योग के सब रहस्यों का प्रकाशन पाया। यह बात उनके लिए ही नहीं अपितु जो ऐसा करेगा उसके लिए भी यह सब बातें उपस्थित होंगी।

भगवान् विष्णु के स्थानों का भी महात्म्य वर्णन इस अंक में व्यक्त है इन सब दृष्टियों से यह 'खण्ड' सर्वसाधारण के लिए बड़ा ही बोधप्रद है।

इस ग्रंथ के प्रकाशक व अनुवादक प० वैकुण्ठनाथ उपाध्याय को आशीर्वाद देते हुए उनका सब प्रकार कल्याण चिन्तन करते हैं।

—श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविण

निवेदन

श्री काशी खण्ड का 'सप्तदश' अंक आज महाशिवरात्रि को काशी के गोदावरी तट पर अवस्थित न्यायपीठ में भगवान श्री गौतमेश्वर के सान्निध्य में काशी अधिपति भगवान् विश्वनाथ के प्रतीक महाराज काशिराज को अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

प्रस्तुत अंक में एक-दो बातें ऐसी मिलती हैं जिसपर सारे आस्तिक समाज को ध्यान देना अत्यावश्यक है। एक तो 'बड़ों को प्रणाम' करने से अपराध की समाप्ति होती है और दूसरे हर्ष-विवाद शून्य 'धर्म पथावलम्बी' बने रहने वाले का देवता भी कुछ नहीं विगाड़ सकते मनुष्यों की कौन कहे।

परन्तु अधिकांश लोग आज इन दोनों बातों से कोसों दूर रहना चाहते हैं। बड़ों को प्रणाम करना तो दूर रहा उनकी उपेक्षा करना या उपहास करना तथा उन्हें अपमानित करने में ही लोग अपना गौरव समझने लगे हैं। परिणाम हो रहा है कि माता-पिता 'शत्रु' समझे जा रहे हैं। भारत देव-भूमि है। अन्यत्र चाहे जो भी हो पर यहाँ की विशेषता 'देवत्व' की है। इस पर भी 'काशी' भारत का प्राण है। अतः प्राण को तो हमें अत्यन्त सजोंकर रखना है। अर्थात् काशी में काशीवासी परम सात्विक हों, हर्ष-विषाद शून्य धर्म-पथावलम्बी बनकर सारे भारत को प्राणवान बनावें जैसे उत्तम पुत्र से पिता पुत्रवान बनता है वैसे ही 'भारत-माता' पुत्रवान बने।

बड़ों को प्रणाम करने के लिए हमें सर्वप्रथम विनयी होना होगा इस प्रकार विवेकी लोग ही बड़ों को प्रणाम कर उनके स्नेह का भाजन बन सकते हैं।

हमारे धर्म पथावलम्बी होने से ही सारे देश को धर्म-प्रकाश की उपलब्धि होगी। काशी प्रकाशिका है सो किस बात की। काशी से विद्या, धर्म, भक्ति तथा पुरुषार्थ को सदा से प्रकाश मिलता रहा। जिस भाँति बिजली घर से सारे नगर को आज प्रकाश मिलता है। यदि बिजली घर अप्रस हो या वहाँ गड़बड़ी रहेगी और उसमें तत्परता न बरती गयी तो सारा नगर अन्धकार में डूबा रहता है। परन्तु यदि हम सब 'धर्म' के प्रकाश को अपने हृदय में प्रज्वलित किये रहेंगे तो हममें अशुद्धि न रहेगी तभी प्रतिभा यथार्थ वस्तु को ग्रहण करेगी।

हम धर्मपथावलम्बियों का यह सौभाग्य है कि काशी अधिपति भगवान विश्वनाथ के प्रतीक 'काशिराज' मार्ग दर्शक रूप में धर्म-पथ का अनुसरण कर रहे हैं। यह मार्ग लोगों को कठिन मालूम पड़ता है परन्तु 'धृतिभाव' में रहने वाले को यही मार्ग सुलभ प्रतित होता है। इसका तात्पर्य यह है कि हमें "विवेक श्रुति सम्पत्ति गुरु भक्ति तपस्विता के संकल्प में आना होगा बिना ऐसा किए कुछ भी बनने वाला नहीं है।

आज भारतीय समाज में भ्रम फैलाकर उसकी एकता को नष्ट करने का कुचक्र तीव्रता के साथ चल रहा है। लोगों में धर्म व अवतार आदि के प्रति अनर्गल प्रलाप कर आस्तिकजनों के तथा नयी पीढ़ी के वर्ग के मस्तिष्क को विकृत किया जा रहा है। इसके लिए हम सबको सतर्कता के साथ अपने पुराणों का गहन अध्ययन करना वर्तमान समय में परमावश्यक हो गया है।

हमें आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि देव-भूमि भारत के निवासियों का इस अंक में वर्णित आख्यान को मनन करने तथा उस पर अनुगमन करने से बहुत बड़ा कल्याण होगा।

—वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

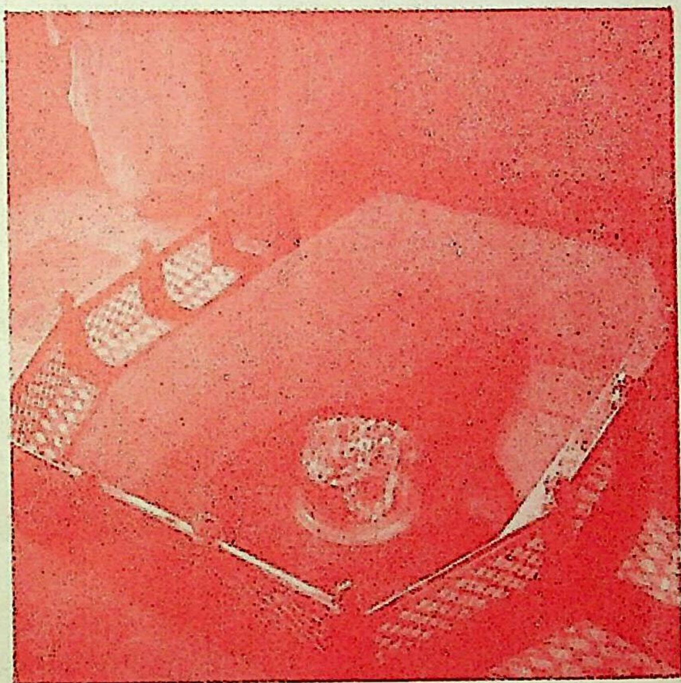
धन्यवाद

श्रुतिप्रसिद्ध काशिराज महाराजाधिराज श्री विभूतिनारायण सिंह जू देव के हम चिर ऋणि हैं। महाराजश्री ने पूर्व की भाँति इस सप्तदश भाग का प्रकाशनोद्घाटन अपने कर कमलों द्वारा करना स्वीकार किया। प्रातः स्मरणीय वेदमूर्ति पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़ जी महाराज को प्रणाम है। आपकी कृपा सदा की भाँति बनी रहे यही कामना है। सप्तदश भाग में पं० विश्वनाथ शास्त्री दातार, पं० जनार्दनशास्त्री पाण्डेय, पं० विष्णुशास्त्री मंडलीकर पं० उदय कृष्ण नागर. पं० रामचन्द्र शास्त्री होसमने श्री विष्णु मण्डलीकर श्री अन्नपूर्णा के महन्त जी महाराज के हम विशेष आभारी हैं, उनके सहयोग के लिए धन्यवाद है।

अंक के प्रकाशन में राधेश्याम जी खेमका, चित्रकार मन्नू सिंह छविकर पं० शत्रुघ्न जी व्यास, श्री अन्नपूर्णा ब्लाक वर्क्स तथा श्री काली प्रसाद के हम आभारी हैं जिन्होंने समय से ग्रन्थ तैयार करने अथक सहयोग दिया।

—रामनारायण उपाध्याय

विषय सूची



श्री वृषभध्वजेश्वर

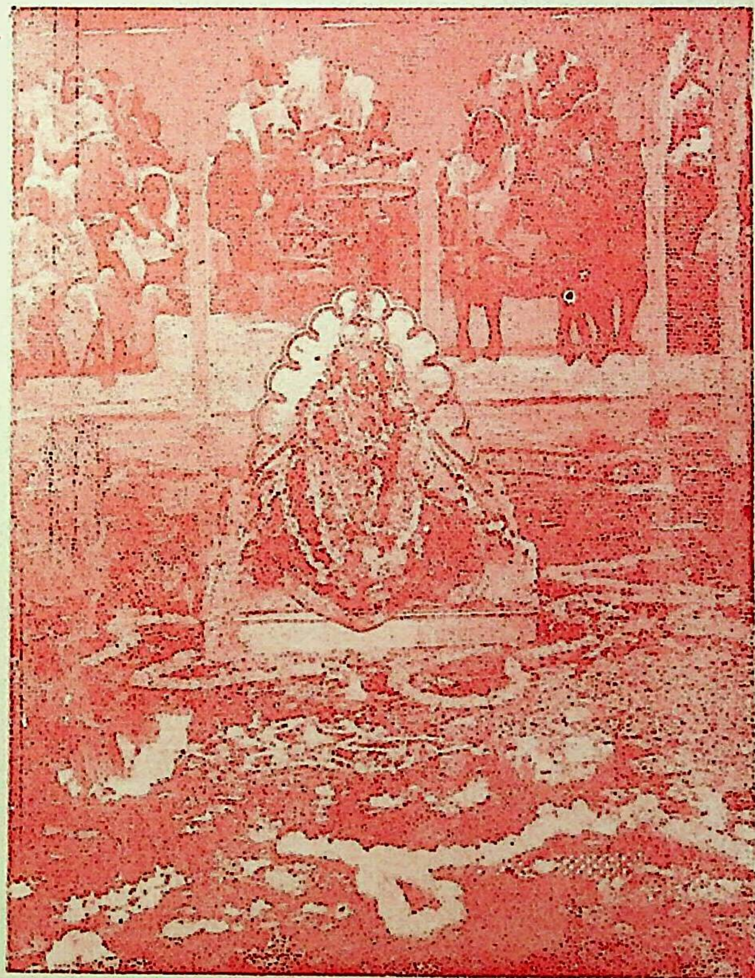
(कपिल धारा)

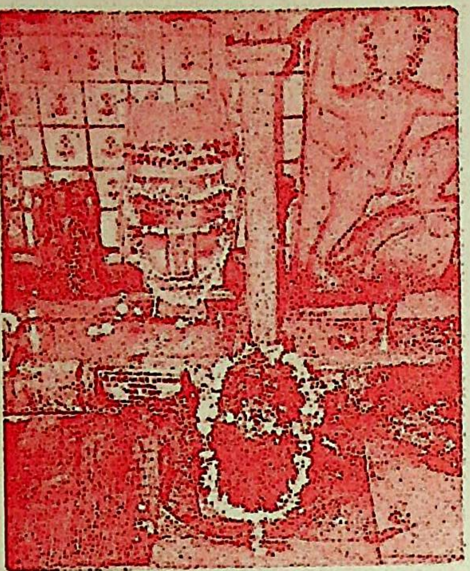
श्री काशी विश्वनाथ



भगवान श्री आदिकेशव

भगवती
श्री मणिकर्णिका देवी





श्री प्रयागेश्वर
श्री बन्दी देवी (छोटी मूर्ति)
श्री हनुमान जी के दाहिने

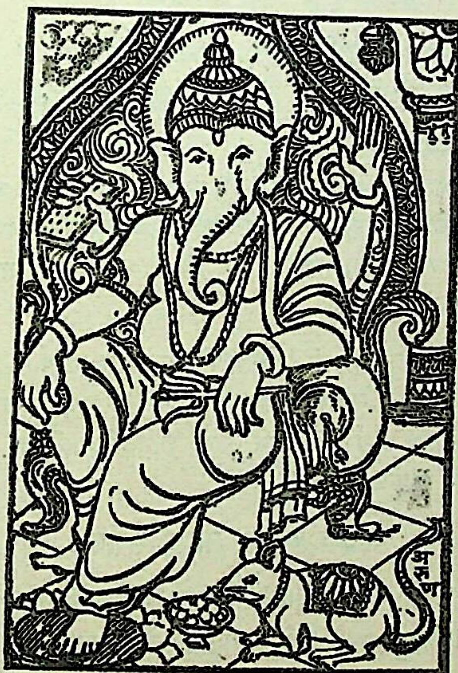
श्री वेणीमाधव



श्री गणेशायनमः

अध्याय ६१

काशी में विष्णु स्थान और उनके २४ भेद



विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वंदे काशीं गुहां गंगां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥

अगस्त्य ऋषि ने कहा कि हे गिरिजानन्दन षडानन। आपके मुख से भगवान् विष्णु का बिन्दुमाधव नाम तथा पंचनद तीर्थ की उत्पत्ति का आख्यान सुन कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। अब आप यह बात बतायें कि अग्निबिन्दु महर्षि ने जो यह पूछा था कि "इस काशी में हे विष्णो आपकी कौनसी मूर्ति कहाँ विराजमान है, उसके उत्तर में भगवान् दानव-सूदन श्री माधव ने क्या कहा ?

श्री स्कन्द जी ने कहा कि भगवान् ने ऋषि को जो सुनाया था वही मैं आपसे कह रहा हूँ सुनें। भगवान् बिन्दुमाधव ने कहा कि हे ऋषि आपने जनहिताय बड़ा ही सुन्दर प्रश्न किया है।

आदिकेशव, ज्ञान केशव

काशी में "पादोदक तीर्थ" पर मैं आदिकेशव नाम से सदा निवास कर भक्तों को मुक्ति प्रदान करता रहता हूँ। जो लोग अमृतस्वरूप 'अविमुक्त क्षेत्र' में आदिकेशव का पूजन अर्चन करते हैं वे दुखों से रहित हो अन्त में अमृत-पद को प्राप्त करते हैं। वहाँ मेरे द्वारा स्थापित 'संगमेश्वर' नामक महालिंग है। आदिकेशव का दर्शन मात्र करने वालों को संगमेश्वर सदा भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं।

पादोदक तीर्थ के समीप में 'श्वेतद्वीप' नामक महातीर्थ है, उस स्थान पर मैं 'ज्ञानकेशव' नाम से निवास करता हुआ भक्तों को सदा ज्ञान प्रदान करता रहता हूँ। श्वेतद्वीप तीर्थ में स्नान कर 'ज्ञान केशव' की पूजा करने से मनुष्य कभी ज्ञान-भ्रष्ट नहीं होता।

तार्क्ष्य केशव, नारद केशव

वहीं गरुड़ तीर्थ पर मैं 'तार्क्ष्य केशव' नाम से निवास करता हूँ। जो भक्ति के साथ वहाँ मेरी पूजा करते हैं वे लोग गरुड़ के समान मेरे प्रिय होते हैं।

इसी भाँति नारद तीर्थ पर मैं 'नारद केशव' रूप में रहता हूँ। इस तीर्थ में स्नान करने वाले को मैं ब्रह्म-विद्या का उपदेश देता हूँ।

प्रह्लाद केशव, आदित्य केशव

प्रह्लाद तीर्थ पर मैं 'प्रह्लाद केशव' नाम से विराजता हूँ। भक्ति एवं सम्पत्ति की इच्छा रखने वाले लोगों को जो मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं वहाँ सभी फल देता हूँ।

अम्बरीष तीर्थ पर 'आदित्य केशव' नाम से मैं विख्यात हूँ। वहाँ पर जो कोई उस तीर्थ में स्नाकर भक्ति पूर्वक मेरा दर्शन करता है उसका मैं पापान्धकार समाप्त कर देता हूँ।

आदि गदाधर और भृगु केशव

दत्तात्रयेश्वर के दक्षिण ओर मैं 'आदि गदाधार' नाम से विख्यात हूँ। वहाँ पर मेरा जो लोग दर्शन-पूजन करते हैं उन भक्तों के यहां रहकर उनके रोग राशि को मैं समाप्त करता हूँ।

आदि गदाधर के समीप में भार्गवतीर्थ है जहां पर मैं 'भृगुकेशव' नाम से निवास करता हूँ। और वहाँ के निवासी भक्तों के मनोरथों को मैं पूर्ण करता हूँ।

वामन केशव, नरनारायण, यज्ञवाराह

मनुष्यों के अभिष्ट फलों को देने के लिए वामन तीर्थ पर मैं 'वामन-केशव' नाम से पूजित हूँ।

नर-नारायण तीर्थ पर मैं 'नरनारायण' नाम से निवास करता हुआ भक्तों को अपने जैसा 'नरनारायण' स्वरूप प्रदान करता रहता हूँ।

यज्ञ-वाराह तीर्थ पर मैं यज्ञवाराह नाम से विख्यात हूँ। वहाँ पर जो लोग मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं सभी यज्ञों का फल देता रहता हूँ।

विदार नरसिंह, गोपी गोविन्द

विदार नरसिंह तीर्थ पर मैं 'विदार नरसिंह' नाम से निवास करते हुए काशी वासियों के विघ्नों को विदीर्ण कर उपद्रव को शान्त करता रहता हूँ।

गोपी गोविन्द तीर्थ पर मैं 'गोपीगोविन्द' नाम से विराजमान हूँ। जो लोग यहाँ पर मेरी पूजा-अर्चा करते हैं वे मेरी माया से अभिभूत नहीं होते।

लक्ष्मीनृसिंह,

लक्ष्मीनृसिंह तीर्थ पर मैं 'लक्ष्मीनृसिंह' नाम से विराजते हुए भक्तों को सदा 'मोक्ष लक्ष्मी' का दान किया करता हूँ।

शेष माधव

पापनाशक 'शेषतीर्थ' पर मैं 'शेषमाधव' नाम से विख्यात हूँ। यहाँ पर जो लोग मेरी पूजा करते हैं उनकी सभी अभिलाषाओं को मैं पूर्ण करता रहता हूँ।

शेष माधव, हयग्रीव केशव

शंख माधव तीर्थ पर 'शंख माधव' नाम से मैं प्रतिष्ठि हूँ। यहाँ पर जो भक्त मुझे जलपूरित शंख से स्नान कराते हैं वे मनुष्य शंख-निधि का अधीश्वर बनते हैं।

हयग्रीवतीर्थ पर मैं 'हयग्रीव केशव' नाम से स्थित हूँ। इस स्थान पर जो कोई मुझे मात्र प्रणाम करते हैं वह मेरे परम पद की प्राप्ति कर लेते हैं।

भीष्म केशव, निर्वाण केशव

वृद्धकालेश्वर के पश्चिम ओर 'भीष्म केशव' नाम से मैं विख्यात हूँ। वहाँ पर जो भक्त पूजन-अर्चन करते हैं उनके भयंकर उपद्रव को मैं शान्त करता हूँ।

लोलार्क के उत्तर ओर मैं 'निर्वाण केशव' नाम से प्रख्यात हूँ। उस स्थान पर जो भक्त मेरा आराधन करते हैं उनके चित्त की चंचलता को मैं दूर करते हुए उन्हें 'निर्वाण पद' की प्राप्ति कराता रहता हूँ।

भुवन केशव, ज्ञान माधव, श्वेत माधव

त्रैलोक्य सुन्दरी श्री बन्दीदेवी के दक्षिण की ओर मैं 'भुवन केशव' नाम

से जाना जाता हूँ। वहाँ पर मेरी पूजा करने वाले पुनः गर्भ में वास नहीं करते।

ज्ञानवापी के समक्ष मैं 'ज्ञान माधव' नाम से प्रतिष्ठित होकर भक्तों को शाश्वत-ज्ञान की उपलब्धि कराता रहता हूँ।

विशालाक्षी के समीप मैं 'श्वेत माधव' नाम से निवास करता हूँ। वहाँ जो भक्त मेरी अर्चना करते हैं उन्हें मैं 'श्वेतद्वीपेश्वर' के समान बना देता हूँ।

प्रयाग माधव

दशाश्वमेघ के उत्तर की ओर प्रयागतीर्थ में 'प्रयाग-माधव' नाम से मैं विख्यात हूँ। वहाँ पर जो लोग यथावत् स्नान कर मेरा दर्शन-पूजन करते हैं वे सभी पापों से छूट जाते हैं। और माघ मास में प्रयाग में जाकर स्नान करने पर भक्तों को जो फल प्राप्त होता है उससे दशगुना अधिक फल वहां दशाश्वमेध में मेरे समक्ष स्नान करने वाले को प्राप्त होता है।

भगवान् विष्णु ने आगे कहा कि हे अग्नि बिन्दो। गंगा-यमुना के संगम पर स्नान करने वालों को जो पुण्य अर्जित होता है उससे दशगुना अधिक फल मेरे समक्ष काशी के प्रयाग तीर्थ में स्नान करने से भक्तों को मिलता है। इतना ही नहीं सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में स्नान ध्यान से जो फल की प्राप्ति होती है उससे दशगुना अधिक फल की प्राप्ति काशी में यहाँ स्नान करने से प्राप्त होती है। इस स्थान पर गंगा उत्तर-वाहिनी तथा यमुना पूर्व-वाहिनी हैं। इस संगम स्थल पर पहुँचने वाले की ब्रह्महत्या जैसी महा हत्या भी छूट जाती है। यहाँ पर केशमुण्डन और पिण्डदान तथा अनेक प्रकार का दान करना चाहिए।

हे अग्निबिन्दो! प्रजापति—क्षेत्र प्रयागराज में जिन गुणों का वर्णन किया गया है वे सब गुण 'अविमुक्त महा-क्षेत्र' में प्राप्त हो जाते हैं। प्रयाग में सभी कामनाओं के प्रदाता प्रयागेश्वर नामक महालिंग है। इसका सान्निध्य होने से यह तीर्थ 'कामद' कहा जाता है। सूर्य के माघ-मास में मकर राशि पर चले जाने पर जो लोग अरुणोदय काल में काशी के प्रयागतीर्थ में स्नान करते हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। अतः वहाँ स्नान करना अपेक्षित है।

जो लोग माघ मास में संयमित होकर काशी के प्रयाग तीर्थ में स्नान करते हैं उन्हें दश-अश्वमेध-यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। माघ-मास में जो प्रयाग तीर्थ में स्नान कर मेरा (प्रयाग माधव) दर्शन करता है और 'कामद प्रयागेश्वर' का पूजन करते हैं वह लोग धन-धान्य, पुत्र और सम्पत्ति से परिपूर्ण हो उत्तमोत्तम भोगों को भोगते हुए अन्त में मोक्ष गति को प्राप्त होते हैं

माघ मास में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे और ऊपर के सभी तीर्थ प्रयागराज में चले जाते हैं किन्तु हे मुने! वाराणसी में जितने तीर्थ विराजते हैं वे सब कहीं नहीं जाते यदि जाते भी हैं तो केवल यहीं प्रयागतीर्थ पर जाते हैं।

सभी तीर्थ प्रथमतः सदा प्रातः काल काशी के पंचनद तीर्थ पर मेरे (बिन्दुमाधव) के समीप आते हैं और माघ मास में प्रयागेश्वर के समीप मेरे (प्रयाग माधव) पास आकर वहां स्नान करते हैं। मध्याह्न में सभी 'तीर्थ' मुक्तिदायी 'मणिकर्णिका' में स्नान हेतु जाते हैं

मणिकर्णिका ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ

हे मुने। काशी में ये तीनो तीर्थ (पंचनद, प्रयाग तीर्थ और मणिकर्णिका) में कौन से श्रेष्ठ हैं इत्यादि सब गुप्त बातें मैंने तुम्हें बतायी है। एक और गूढ़ बात कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो। यह बात भक्तों के ही समक्ष कहने की है भक्ति-हीनों के समक्ष नहीं। वह यह है कि काशी में वैसे तो सभी तीर्थ एक से एक बढ़कर हैं और वे अपने तेजोबल से बड़े से बड़े पापों का नाश करते रहते हैं, परन्तु एक ऊंगली उठाकर तुमसे मैं कहता हूँ कि वाराणसी पुरी में 'मणिकर्णिका' ही सर्व-श्रेष्ठ तीर्थ है। मणिकर्णिका के--'तेजोबल' से सभी तीर्थ अपने-अपने स्थानों पर भक्तों के पापों का नाश किया करते हैं। इसी लिए सभी तीर्थ मध्याह्न में 'मणिकर्णिका' में आकर प्रायश्चित्तार्थ स्नान करते रहते हैं। सभी पर्वों पर या बिना पर्व के ही नित्य नियम पूर्वक समस्त तीर्थ मध्याह्न में मणिकर्णिका में स्नान कर अपने को निर्मल बनाते हैं इन्हें पाप संबंध होने का कारण यह है कि प्रातः या पर्व विशेष पर वह अपने यहाँ

आये पापियों के पाप को दूर करते रहते हैं। उन पापों से फिर तीर्थों को छुटकारा मणिकर्णिका में स्नान करने से ही होता है।

तीर्थों की कौन कहे स्वयं भगवान् विश्वनाथ भी 'भवानी' के साथ नित्य मध्याह्न में 'मणिकर्णिका स्नान करने आते हैं। हे मुने! मैं भी नित्य मध्याह्न-काल में अपनी अर्धांगिनी लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठलोक से मणिकर्णिका में स्नानार्थ आता हूँ।

मेरा 'हरिनाम'

मेरा एक बार जो नाम लेता है उसके पाप का मैं हरण कर लेता हूँ इसी लिए मेरा 'हरि' नाम प्रसिद्ध है। यह प्रभाव मुझे मणिकर्णिका से ही प्राप्त हुआ है। पितामह भी अपनी मध्याह्न-क्रिया करने के लिए ब्रह्म-लोक से नित्य मणिकर्णिका आते हैं। इन्द्रादि दिग्पाल, मरीचि आदि महार्षिगण, नाग लोक से 'शेष' और वासुकी आदि तथा समस्त चराचरों में सभी सचेतन प्राणी मध्याह्न समय मणिकार्णिका में स्नान करने हेतु आते हैं। इस प्रकार उस समय सबका समागम वहाँ पर होता है।

श्री बिन्दुमाधव ने आगे कहा कि हे मुने! मैं श्री मणिकर्णिका का संपूर्ण गुणानुवाद करने में अपने को समर्थ नहीं पा रहा हूँ। जंगलों में जिन तपस्वियों ने घोर तपश्चर्या की है वे ही लोग अन्त में इस मुक्ति प्रदायिनी 'भूमि' मणि-कर्णिका में आते हैं। जो मनुष्य अन्त में इस मणिकर्णिका को प्राप्त करते हैं उन्हें ही बड़ा दानी एवं नर श्रेष्ठ समझना चाहिए। यथोक्त विधि से जो लोग व्रत आदि करते हैं वे ही अन्त समय में निश्चय ही सुकोमल भूमि 'मणिकर्णिका' पर अपनी शैय्या लगाते है।

जो लोग बड़े पुण्य से उपार्जित अपनी सम्पत्ति को छोड़कर मणिकर्णिका का दर्शन करते हैं उन्हें इस मृत्युलोक में सभी यज्ञों में दीक्षित एवं धन्यवाद का पात्र समझना चाहिए। इस में संदेह नहीं कि जो लोग इष्टापूर्त धर्म-कर्मों का अनुष्ठान किए होते हैं वे ही अन्त समय अर्थात् वृद्धावस्था में मिणकर्णिका को प्राप्त करते हैं। अतः बुद्धिमानों को चाहिए कि प्रयास कर मणिकर्णिका पर रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, हाथी, घोड़ा आदि का दान करे।

मणिकर्णिका पर दान अक्षय होता है

हे मुने ! जो लोग मणिकर्णिका पर धर्मार्जित थोड़ा 'धन' दान करते हैं उसका दान अक्षय बना रहता है। वहाँ जो लोग विधिपूर्वक 'प्राणायाम' करते हैं' उन्हें 'षडंग-योग' साधन का फल प्राप्त होता है। वहाँ पर एक गायत्री जप 'करोड़ गायत्री जप' का पुण्य प्रदान करता है। जो लोग मणिकर्णिका पर यज्ञ में एक आहुति देते हैं उन्हें उस जन्म में अग्निहोत्र करने का पुण्य प्राप्त होता है।

यह सब सुन कर बड़ी भक्ति-भाव से अग्नि-बिन्दु मुनि ने भगवान् बिन्दु-माधव से पूछा कि हे माधव मणिकर्णिका का कितना परिमाण है कृपा पूर्वक वर्णन करें क्योंकि हे पुण्डरीकाक्ष ! आपसे बढ़ कर दूसरा कोई तत्वज्ञ नहीं है।

'मणिकर्णिका की सीमा

भगवान बिन्दु-माधव ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि दक्षिण में गंगा केशव (ललिताघाट) उत्तर में हरिशचन्द्र का मण्डप (श्री संकठा जी के सामने) पूर्व में आधी गंगा तक और पश्चिम में स्वर्ग द्वार (स्वर्गद्वारेश्वर) तक मणिकर्णिका की परिधि है। यह तो स्थूल परिमाण है। परन्तु सूक्ष्म परिमाण को भी मैं बताता हूँ सो भी सुनो। हरिश्चन्द्र-तीर्थ के आगे हरिश्चन्द्र विनायक हैं, मणिकर्णिका कुण्ड के उत्तर की ओर 'सीमा विनायक' विराजते हैं। जो लोग भक्तिभाव से लड्डू आदि का भोग लगाकर मणिकर्णिका पहुँच हरिश्चन्द्र तीर्थ में पितृगणों के निमित्त तर्पण करते हैं उनके पूर्व पुरुष १०० वर्ष तक के लिए तृप्त हो जाते हैं।

जो लोग हरिश्चन्द्र तीर्थ में स्नान कर हरिश्चन्द्रेश्वर को प्रणाम करते हैं वे कभी 'सत्य' भ्रष्ट नहीं होते। इनके समीप में ही श्री पर्वतेश्वर के समीप 'पर्वत तीर्थ' महापापों का नाशक है। मनुष्यों को चाहिए कि वहाँ स्नान, शिवपूजन तथा शक्ति के अनुसार दान करे। ऐसा करने से सुमेरुगिरि पर चढ़कर दिव्य भोगों की प्राप्ति होती है।

पर्वतेश्वर के दक्षिण कंबलाश्व तीर्थ है। इसके पश्चिम की ओर 'कंबला-तरेश्वश्वर' महादेव हैं। इस तीर्थ में स्नान कर जो कंवलाश्वतरेश्वर का पूजन करते हैं उनके वंश में उत्पन्न हुए लोग 'गान' में निपुण तथा श्रीमान् होते हैं। यहीं पर 'योनिचक्र' का निवारण करने वाली 'चक्रपुष्करणी' तीर्थ विराजमान है। इसमें स्नान करने वाले मनुष्य को पुनः संसारचक्र में नहीं आना पड़ता। चक्रपुष्करणी मेरा प्रधान वासस्थल है। उसी स्थल पर मैंने परार्ध वर्ष पर्यन्त घोर 'तप' किया था। उसी स्थान पर मैंने भगवान् विश्वेश्र को प्रत्यक्ष देखा था। उसी स्थान पर मुझे अविनश्वर ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है चक्र पुष्करणी ही 'मणिकर्णिका' नाम से प्रसिद्ध है। मैंने द्रवरूप में बहने वाली मणिकर्णिका को देवी रूप में देखा है।

श्री माधव ने आगे कहा कि अब मैं भक्तों के परम मंगल प्रदान करने वाले दिव्य स्वरूप का वर्णन करता। हूँ मनुष्य यदि ६ मास तक वहाँ त्रिकाल एकाग्र होकर ध्यान करे तो देवी का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है। वह देवी मोक्षकल-क्ष्मी है। इसका स्वरूप इस प्रकार है, चतुर्भुज विशाल त्रिनेत्र वाली वह दो हाथ जोड़े सदा पश्चिमाभिमुखी, दाहिने हाथ में नील कमल की माला है, वरदान हेतु एक हाथ उठा हुआ है। बाएं हाथ में मातुलुंग (बिजौरा नीबू) फल शोभित हो रहा है। वह देवी सदा १२ वर्ष की कुमारी ही प्रतीत होती है। उसकी कांति स्फटिक के समान है। केश अन्यन्त नील वर्ण के एवं चिकने हैं। उनके मध्य में केतकी का पुष्प शोभायमान रहता है। देवी का अ ष्ठपल्लव मूंगा और माणिक्य की भाँति रमणीय, है। सर्वांग में मुक्ता का अलंकार और चन्द्रकांति की भाँति श्वेत वस्त्र, वक्ष पर कमल की माला धारण किये हुए रहती है। देवी का यह ध्यान मोक्षार्थी-जन सदा करते हैं। इस 'मोक्षलक्ष्मी' का मन्दिर मणिकर्णिका ही है।

श्री बिन्दु माधव ने आगे कहा कि अब में 'भक्तकल्पद्रुम' नामक मंत्र को कहता हूँ जिसका जप करने से मनुष्य अष्टसिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं। पहले प्रणव, पश्चात् सरस्वती बीज, भुवनेश्वरी बीज, लक्ष्मी बीज, काम बीज, होंगे उसके पश्चात् बिन्दु सहित मकार और प्रणव संपुटित 'मणिकर्णिके'

नमः' पद का उच्चारण करना चाहिए। यह पन्द्रह अक्षर का मन्त्र कल्पद्रुम की भाँति सदा जप करने योग्य हैं। जो लोग शुद्ध बुद्धि से इस मन्त्र का जप करते हैं उन्हें सुख, संतति एवं अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति होती है। एक और 'मनुसंख्यक' मन्त्र है। इसमें प्रथम प्रणव तब बिन्दु सहित मकार, उसके पश्चात् मणिकर्णिके' फिर प्रणवात्मिके फिर नमः पद का उच्चारण होता है। मोक्षाभिलाषी मनुष्य को श्रद्धा एवं आदर सहित इस मन्त्र का सदा यज करना चाहिए। बड़ी पवित्रता के साथ गौ का घृत मिलाकर कमल और शक्कर सहित मधु से दशांश हवन करना चाहिए। इस मन्त्र का ३ लाख जप करने वाला मनुष्य कहीं भी मरे तो भी मन्त्र प्रभाव से वह 'मुक्ति' को प्राप्त करता है। नव-रत्नों से से युक्त सुवर्ण की यथोक्त 'मणिकर्णिका देवी' की मूर्ति बनाकर पूजन करना चाहिए। पूजन करने वाले ने ऐसी मूर्तिको सदा अपने घर में रखनी चाहिए अथवा पूजन के पश्चात् मूर्त्ति को मणिकर्णिका में विसर्जित कर देना चाहिए। जो लोग संसार के भय से भयभीत हों, श्रद्धावान हों तथा दूर देश में रहते हो उन्हें ऐसा ही उपाय करना चाहिए।

जो मनुष्य मणिकर्णिका में स्नान कर भगवान् 'मणिकर्णिकेश्वर' का दर्शन करते हैं उन्हें पुनः माता के गर्भ में नहीं जाना पड़ता। पूर्वकाल में मैंने ही अन्तर्गृहि के द्वार पर मणिकर्णिकेश्वर लिंग की स्थापना की है अतः मोक्षार्थियों को उनकी पूजा करनी चाहिए।

पशुपतीश्वर

मणिकर्णिका से पश्चिम में 'पाशुपत' तीर्थ है उसमें स्नान आदि कर भगवान् 'पशुपतीश्वर' का दर्शन करना अत्यावश्यक है। क्योंकि उसी स्थान पर भगवान् विश्वनाथ ने मुझे और श्री ब्रह्मा जी को पशुओं के पाश को हरण करने वाले 'पाशुंपत योग' का उपदेश दिया है। पशुतुल्य जीवों के मायापाश को नाश करने के लिए ही भगवान् 'पशुपतीश्वर' लिंग रूप से काशी में वहाँ विराज रहे हैं।

जो लोग चैत्र शुक्ल १४ को पवित्र मन से पशुपतीश्वर का दर्शन करते हैं, रात्रि में वहाँ जागरण करते हैं उपवासी रहकर भगवान् पशुपति का पूजन करते है और प्रातः पारण करते हैं वे कभी पशु की भाँति बन्धन में नहीं बंधते।

रुद्रावासेश्वर व रुद्रावास तीर्थ

पाशुपत तीर्थ के आगे रुद्रावास तीर्थ में स्नान कर वहीं पर स्थित भगवान् रुद्रावासेश्वर का पूजन करना चाहिए। इस भाँति मणिकर्णिका के दक्षिण दिशा में विराजमान 'रुद्रावासेश्वर' का पूजन करने वाला मनुष्य निःसन्देह 'रुद्रावास' में निवास करता है।

विश्व तीर्थ व विश्वनाथ

रुद्रावास तीर्थ के दक्षिण भाग में समस्त तीर्थों से अधिष्ठित विश्व तीर्थ में स्नान कर वहीं पर स्थित भगवान् 'विश्वनाथ' का दर्शन करना चाहिए। पश्चात् भक्ति पूर्वक विश्वागौरी (अन्नपूर्णा) की पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य 'विश्व-रूप' हो जाता है।

मुक्ति तीर्थ और मोक्षेश्वर

इसके पश्चात् पास में स्थित 'मुक्ति तीर्थ में स्नान कर वहाँ भगवान् 'मोक्षेश्वर' का दर्शन-पूजन करने से मनुष्य निःसन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है। 'अविमुक्तेश्वर' के पीछे 'मोक्षेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य मृत्यलोक में आवागमन से मुक्त हो जाता है।

अविमुक्ति तीर्थ और अविमुक्तेश्वर

मुक्ति तीर्थ से थोड़ी दूरी पर 'अविमुक्तेश्वर तीर्थ' है। उसमें स्नान कर वहीं भगवान् 'अविमुक्तेश्वर' का दर्शन करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

तारक तीर्थ एवं तारकेश्वर

अविमुक्ति तीर्थ के पश्चात् तारकतीर्थ है। इसी स्थान पर भगवान् विश्वनाथ मृत जीवों के कान में 'तारक मंत्र' का उपदेश देते हैं। जो मनुष्य इस तारक तीर्थ में स्नान कर वहाँ पर भगवान् तारकेश्वर का दर्शन-पूजन करते हैं वह स्वयं तो संसार सागर से पार उतरते हैं साथ ही अपने पितरों को भी तार देते हैं।

स्कन्द तीर्थ व श्रीस्कन्द

तारक तीर्थ के समीप ही स्कन्द तीर्थ है। यहाँ जो मनुष्य भगवान् षडानन (स्कन्द अर्थात कर्त्तिकेय) का दर्शन करते हैं वह षडकोषों (त्वचा, माँस, रुधिर, नस, हड्डी और मज्जा) से परिपूर्ण शरीर को पुनः नहीं धारण करते। श्री 'कार्तिक देव' का दर्शन करने वाला मनुष्य 'कुमार' सदृश शरीर धारण कर 'स्कन्द-लोक' में निवास करता है।

ढुंढितीर्थ और ढुंढिराज

स्कन्द तीर्थ के पचात् ढुंढितीर्थ है। इसमें स्नान कर श्री ढुंढिराज गणेश की जो मनुष्य वन्दना करता है उसपर किसी प्रकार का कभी विघ्न नहीं पड़ता।

भवानी तीर्थ और भवानी

ढुंढि तीर्थ के दक्षिण में भवानी तीर्थ है। यहाँ स्नान कर भवानी (अन्न-पूर्णा का) वस्त्र, रत्न, भूषण, नैवेद्य, पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजन करना चाहिए। जो कोई काशी में श्रद्धा-भक्ति के साथ भवानी और शंकर का पूजन-अर्चन करता है वह सचराचर त्रैलोक्य का पूजन करने का फल अर्जित कर लेता है। अस्तु विज्ञजनों को चाहिए कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को भवानी का दर्शन-पूजन करे। इनकी १०८ प्रदक्षिणा करें। उस दिन ऐसा करने से पर्वत, समुद्र, आश्रम, जंगलों सहित सप्तद्वीपा समस्त पृथ्वी की परिक्रमा करने का फल प्राप्त होता है। सन्तोषी जन को प्रतिदिन इनकी ८ प्रदक्षिणा करनी चाहिए इस प्रकार प्रयासकर भवानी और शंकर को प्रणाम करना चाहिए।

भवानी ही काशी में मनुष्य को स्थिर वास करने की अनुमति देती हैं। काशी में तीर्थवास करने वालों को चाहिए कि वह भवानी का प्रयासपूर्वक सेवा करें। भवानी ही काशीवासियों का सदा योग-क्षेम करती रहती हैं। अतः काशी में रहने वालों को इनकी पूजा करनी चाहिए। मोक्षाकांक्षी भिक्षुकों को काशी में भिक्षा देने वाली भगवान् विश्वेश्वर की कुटुम्बिनी 'भवानी देवी' से ही मोक्ष-भिक्षा माँगनी चाहिए।

विश्वनाथ काशी में गृहस्थ हैं

काशी में भगवान् विश्वनाथ गृहस्थ हैं और उनकी कुटुम्बिनी (गृहिणी) भवानी हैं अतः वही समस्त काशीवासियों को मोक्ष-भिक्षा प्रदान करती हैं। काशीवासी को जो कुछ दुर्लभ होता है उसे 'भवानी' सुलभ करती हैं। जो मनुष्य चैत्रशुक्ल की महा अष्टमी को रात्रि भर जागरण कर प्रातः काल शुद्ध होकर 'भवानी' की पूजा करता है उसे वांछित फल की प्राप्ति होती है। शुक्रेश्वर से पश्चिम ओर विराजमान 'भवानी' का स्थान है। उसका दर्शन जो करता है उसका निःसन्देह मनोरथ सिद्ध होता है। भक्तों को चाहिये कि वे निरन्तर काशी में वास, उत्तर वाहिनी गंगा में स्नानकर भवानी और शंकर का दर्शन-पूजन करें ऐसा करने से भुक्ति व मुक्ति प्राप्त हो सकती है। भवानी के समक्ष इस प्रकार उपस्थित होना चाहिए—

मातर्भवानि तव पादरजो भवानि मातर्भवानि तव दासतरो भवानि।
मातर्भवानि न भवानि यथा भवेस्मिंस्त्वन्द्भाग्भवान्यनुदिनं न पुनर्भवानि।।

अर्थात् हे माता ! भवानि ! मैं आपके चरणों का रज बनूं। हे भवानि। माताः। मैं आपका दास होऊँ। हे माता मुझे पुनः इस संसार का दुःख न भोगना पड़े हे देवी मैं सदा आपका भजन करूं और पुनः इस संसार में उत्पन्न न होऊँ।

सुखाभिलषी काशीवासी लोगों को बैठते, चलते, सोते जागते हुए सदा भवानी से उक्त प्रार्थना करते रहनी चाहिए।

ईशानतीर्थ व ईशानेश्वर

भवानी तीर्थ के समीप में ही 'ईशान तीर्थ' है। उसमें स्नान कर भगवान् ईशानेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता।

ज्ञान तीर्थ व ज्ञानेश्वर

वहीं पर मनुष्यों को ज्ञान देने वाला 'ज्ञानतीर्थ है उसमें स्नान कर ज्ञानवापी के समीप भगवान् ज्ञानेश्वर का दर्शन-पूजन करने से मृत्यु के समय ज्ञान शून्यता नहीं होती। उसी स्थान पर परमसम्पत्ति का प्रकाशक नन्दी तीर्थ है।

नन्दी तीर्थ और विष्णु तीर्थ

ज्ञानवापी के उत्तर नन्दीश्वर हैं नन्दी तीर्थ पर पिण्डदान करने और अन्न, धन आदि के दान करने से महादेव के 'गण' का पद प्राप्त हो जाता है।

भगवान् बिन्दुमाधव ने आगे कहा कि हे मुने ! नन्दीतीर्थ से दक्षिण में मेरा प्रधान 'विष्णुतीर्थ है। वहाँ पिण्डदान करने से मनुष्य पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता है। जो कोई विष्णु-तीर्थ में स्नान कर विश्वेश्वर के दक्षिण भाग में मेरा दर्शन करता है वह विष्णु लोक को चला जाता है। जो कोई एकादशी अथवा देवशयनी अर्थात् प्रबोधिनी को मेरी उस मूर्ति की पूजा करता है, रात्रि में वहाँ जागरण करता है तथा दूसरे दिन प्रातः काल शुद्ध होकर भक्ति-भाव से मेरा पूजन करता है, ब्राह्मणों को भोजन कराता है, गौ सुवर्ण और भूमिका दान करता है वह मनुष्य पुनः भूमि पर जन्म नहीं लेता। जो बुद्धिमान् कृपणता को छोड़कर वहाँ व्रत का उद्यापन करता है वह मेरी आज्ञा से सम्पूर्ण व्रतों का फल प्राप्त करता है।

नाभितीर्थ व पितामहेश्वर

मेरे तीर्थ के दक्षिण में पितामह तीर्थ है। वहाँ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करने वाला मनुष्य अपने पितृगणों को तृप्त करता है और ब्रह्मनाल के ऊपर विराज रहे भगवान् 'पितामहेश्वर' लिंग का पूजन करने से मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। ब्रह्मस्रोत के समीप जो कुछ शुभाशुभ कर्म किया जाता है प्रलय काल में भी उसका नाश नहीं होता। पृथ्वी के नाभि स्थान में रहने से यह तीर्थ 'नाभितीर्थ' कहा जाता है। यह पृथ्वी ही नहीं समस्त ब्रह्मांड गोलक की शुभ नाभि है। यहीं मणिकर्णिका की भी नाभि है जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड गोलक का उदय और अस्त होता है।

त्रैलोक्य में ब्रह्मनाल प्रधान तीर्थों में प्रसिद्ध है। मनुष्य उस तीर्थ के संगम पर स्नानकर करोड़ों जन्म के मलों से मुक्त हो जाता है। जिसकी एक हड्डी ब्रह्मनाल में गिरती है उसे कभी पुनः ब्रह्मांड मण्डप में प्रवेश नहीं करना पड़ेगा।

ब्रह्मनाल के दक्षिण में भागीरथी तीर्थ है। यहां स्नान करने वाला ब्रह्म-हत्या से मुक्त हो जाता है। स्वर्गद्वार के समीप ही 'भागीरथीश्वर' लिंग का दर्शन करने से ब्रह्महत्या के पाप का नाशक पुरश्चरण हो जाता है जिसके पूर्व पुरुष अधोगति को प्राप्त रहते हैं उसे तो प्रयास कर 'भागीरथी तीर्थ में तर्पण करना ही चाहिए। वहाँ विधानपूर्वक श्राद्ध करने और ब्रामणों को भोजन कराने से पितृगण ब्रह्मलोक में पहुँचाये जाते हैं।

खुरकर्त्तरि तीर्थ

भगीरथ तीर्थ के दक्षिण में 'खुरकर्त्तरी' नामक महातीर्थ है। इस तीर्थ में स्नान-तर्पण आदि सम्पन्न कर जो मनुष्य 'खुरकर्तीश्वर' का दर्शन करता है वह गौ-धन से भी वंचित नहीं होता और अन्त में गोलोक में वास करता है।

मारकण्डेय, वशिष्ठ व अरुन्धती तीर्थ

खुरकरी तीर्थ के दक्षिण में 'मारकण्डेय तीर्थ' है। इस पातक नाश करने वाले तीर्थ पर श्राद्ध-तर्पण इत्यादि क्रिया सम्पन्न करने पर मनुष्य मारकण्डेश्वर की कृपा से इस लोक में दीर्घायु, ब्रह्मतेज से संवर्धित कीर्तिमान् होता है।

इसके बाद में वशिष्ठ तीर्थ है यहाँ पर तर्पण व श्राद्ध कर भगवान् वशिष्ठेश्वर का दर्शन करने वाला मनुष्य तीन जन्म के संचित पापों से मुक्त हो ब्रह्मतेज से पूर्ण हो वशिष्ठ लोक में वास करता है। उसी स्थान पर स्त्रियों का सौभाग्य बढ़ाने बाला अरुंधती तीर्थ है। इस तीर्थ में पतिव्रता स्त्रियों को विशेष रूप से स्नान करना चाहिए। अरुंधती तीर्थ में क्षण भर के लिए गोता लगाने पर अरुन्धती के प्रभाव बल से पुंश्चलिता का दोष मिट जाता है।

जो मनुष्य मारकण्डेश्वर के पूर्व भाग में वशिष्ठेश्वर का पूजन करता है वह निष्पापी हो बड़ा ही पुण्यशाली होता है। इस स्थान पर वशिष्ठ व अरुंधती का प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिए। इनकी पूजा से स्त्री को वैधव्य और पुरुष को स्त्री वियोग नहीं होता।

नर्मदा व त्रिसंध्येश्वरतीर्थ

वशिष्ठ तीर्थ के दक्षिण में नर्मदा तीर्थ है। यहाँ स्नान दान आदि कर 'नर्मदेश्वर' का दर्शन करने पर मनुष्य धनहीन नहीं होता। इसके बाद त्रिसध्येश्वर के पूर्व में त्रिसंध्येश्वर तीर्थ है। इसमें स्नान, तर्पण दान आदि तथा सन्ध्यावन्दन करने से संध्य.पासन, कर्म के काल लोप के दोष मुक्ति मिल जाती है। द्विज लोग त्रिकाल सन्ध्या कर भक्ति पूर्वक भगवान् त्रिसन्ध्येश्वर का दर्शन कर तीनों वेदों के अध्धयन करने का पुण्य अर्जित करते हैं।

योगिनी व अगस्त्य तीर्थ

इसके पश्चात् योगिनी तीर्थ है। उसमें स्नान कर जो मनुष्य योगिनी पीठ का दर्शन करता है वह समस्त योगों की सिद्धि प्राप्त करता है। इसी के पास अगस्त्य तीर्थ है। यहाँ स्नान करने से बड़े से बड़े पाप राशियों का नाश होता है। जो कोई अगस्त्य कुण्ड में स्नान तर्पण कर श्री अगस्त्येश्वर का दर्शन करता है। वह समस्त पापों से छूटकर पूर्वजों के साथ शिवलोक में निवास करता है।

अगस्त्येश्वर के बाद गंगाकेशव तीर्थ है जो सब पापों का नाश करता है। इस तीर्थ पर 'गंगाकेशव' नामक मूर्ति है। श्री बिन्दु माधव ने कहा कि हे मुने मेरी इस मूर्ति का पूजन करने वाला मेरे लोक में पूजित होता है। इस तीर्थ में पिण्डदान करने वालों के पितर लोग १०० वर्ष के लिए तृप्त हो जाते हैं।

वैकुण्ठ माधव व वीर माधव

वैरोचनेश्वर से पूर्व दिशा में 'वैकुण्ठ' माधव नाम से मैं विख्यात हूँ। वहाँ पर जो लोग मेरी पूजा करते हैं, उन्हे वैकुण्ठ में मेरे पूजन करने का फल प्राप्त होता है।

श्री वीरेश्वर के पश्चिम में 'मैं वीर-माधव' नाम से जाना जाता हूँ। व्रतस्थ रहकर जो कोई वहाँ मेरा पूजन करता है वह कभी यम-यातना नहीं भोगता।

काल माधव

काल भैरव के पास में 'काल माधव' नाम से जाना जाता हूँ। वहाँ पूजन करने वाले भक्तों का कलि और काल कुछ बिगाड़ नहीं पाते। अगहन मास की शुक्ल एकादशी को व्रतस्य रहकर जो काल माधव की पूजा करता है, रात्रि में जागरण करता है उसे कभी यमराज का मुख नहीं देखना पड़ता। इस मूर्त्ति को प्रणाम मात्र करने वाला मनुष्य निर्वाण-पद को प्राप्त होता है।

नृसिंह

हे मुने! ऊँकारेश्वर के पूर्व भाग में 'महाबलि नृसिंह' के नाम से मैं बैठा हूँ। उनका पूजन करने वाला मनुष्य यमराज के बलवान् दूतों को कभी नहीं देखता।

चण्ड भैरव के पूर्व में मैं 'प्रचण्ड नरसिंह' नाम से विख्यात हूँ। उसकी पूजा करने वाला प्रचण्ड पापों से मुक्त हो जाता है। हे तपोधन! पितामहेश्वर के पीछे 'महाभयहर नृसिंह' नाम से मैं विख्यात हूँ। वहाँ पर मैं अपने भक्तों का भय नाश करता हूँ।

कमलेश्वर के पश्चिम ओर मैं 'अत्युग्र नरसिंह' नाम से वास करता हूँ। उस रूपमें जो मेरी पूजा करता है उसके उग्रतम पापों का मैं नाश करता हूँ।

ज्वालामुखी के समीप में 'ज्वाला माली नृसिंह' नाम से मैं विख्य त हूँ। वहाँ पर मैं अपने भक्तों के पापों के ढेर को तृण के समान भस्म करता हूँ।

काशी की रक्षा मे दक्षबु द्ध वाले 'कंकाळ भैरव' के पास में मैं दैत्य-द नवों का नाश करनेवाला 'कोलाहल नृसिंह' नाम से जाना जाता हूँ। वहाँ पर मेरा यह नाम लेने से पाप कोलाहल (चिल्लाने) करने लगते हैं। वहाँ मेरी पूजा करने वाले को कभी उपसर्ग बाधा नहीं सताती।

नीलकंठ महादेव के पीछे मैं 'विटक नरसिंह' नाम से विख्यात हूँ। उसकी पूजा करने वाला सदा निर्भय रहता है।

अनन्त माधव और दधि वामन

अनन्तेश्वर के समीप में मैं 'अनन्त माधव' नाम से प्रतिष्ठित हूँ। वहाँ

जाकर जो भक्त मेरा पूजन करते हैं उनके अनन्त कलुषों का मैं हरण कर लेता हूँ।

मैं दधिवामन नाम से पूजनीय हो अपने भक्तों को दही-भात देने वाला भी हूँ। इस नाम का स्मरण करने वाला मनुष्य कभी दरिद्र नहीं रहता।

त्रिलोचनेश्वर के उत्तर में मैं त्रिविक्रम रूप से विराजमान हूँ वहाँ पर जाकर जो कोई मेरी पूजा करता है उसे मैं लक्ष्मी प्रदान करता हूँ तथा उसके पापों का नाश करता हूँ।

बलिभद्रेश्वर के पूर्व की ओर में दैत्यराज बलि द्वारा पूजित मैं 'बलिवामन' नाम से विख्यात हूँ। वहाँ पहुँचकर मेरी पूजा करने वालों का बल बढ़ता है।

ताम्रवाराह

ताम्रद्वीप से आकर मैं काशी में भवतीर्थ के दक्षिण में 'ताम्रवराह' नाम से अपने भक्तों को अभिष्ट फल प्रदान करता रहता हूँ।

श्री बिन्दु माधव ने आगे कहा कि हे तपोनिधि ! मैं धरणीवराह नाम से प्रयागेश्वर के समीप स्थित हूँ। वहीं पर वाराहतीर्थ में स्नान कर मेरा दर्शन करने वाला पुनः अनेक योनियों में भ्रमण नहीं करता। इस तीर्थ पर थोड़ा सा अन्न, दान करने पर भूमि-दान करने का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य मेरी भक्तिरूपी नौका प्राप्त कर लेता है वह प्रलयकाल में भी कभी नहीं डूबता ! उसी स्थान पर वराहेश्वर के समीप में मैं 'कोकावराह' नाम से विख्यात हूँ। वहाँ मेरी पूजा करने वाला मनुष्य अपना चिन्तित फल प्राप्त करता है।

विष्णु की १८९० मूर्ति काशी में

हे मुने ! काशी में मेरी पाँच सौ मूर्तियाँ नारायण रूप की, एक सौ जल-शायी रूप की, तीस कच्छप रूप की, बीस मत्स्य रूप की, एक सौ आठ गोपाल रूप की, सहस्त्रशः (एक हजार) बौद्ध रूप की, तीस परशुराम रूप की और एक सौ एक 'राम' रूप की हैं। मुक्ति-मण्डप में मैं 'विष्णु' रूप में अकेला ही हूँ।

६० लाख विष्णु गण काशी की रक्षा में

श्री बिन्दु माधव ने आगे कहा कि हे मुने! भगवान् त्रिश्वनाथ ने स्वयं प्रसन्न हो कर मुक्ति-मंण्डप में मुझे स्थान दिया है। मेरे ६० लाख अनुचर हाथों में चक्र और गदा धारण कर काशी की रक्षा करते हैं।

इन सब आख्यानों को सुनकर अग्निबिन्दु ने प्रसन्नता व्यक्त की और रोमांचित हो भगवान् से पूछा कि हे प्रभो! कृपा पूर्वक मेरे सन्देह को दूर करने तथा भक्तों के हितार्थं यह बतलावें कि इन मूर्तियों का भेद क्या और क्यों हैं? हे अनन्त! आपकी कितनी मूर्त्तियाँ हैं और वह कैसे जानी जाती हैं?

विष्णु मूर्तियों के २४ भेद

तपस्वी अग्नि बिन्दु की बातों को सुन भगवान् बिन्दु माधव, क्रम से अपनी मूर्तियों का भेद वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा कि मेरे २४ भेदों को जानकर मनुष्य 'यमराज' की दृष्टि में नहीं पड़ता।

भगवान ने कहा कि हे महाप्राज्ञ! अग्नि बिन्दो। पहले ऊपर का दाहिना हाथ के क्रमे से [१] उसके बाद ऊपर का बाँया हाथ के क्रम से [२] फिर नीचे का दाहिना हाथ के क्रम से [३] और उसके बाद नीचे बाँए हाथ के क्रम से [४] उसमें पहिला क्रम ऐसा है :-

(१) शंख, चक्र गदा और पद्म विभूषित मेरी इस क्रम से आयुधों को समझना। ऐसी मूर्ति को 'केशव' कहना चाहिए। केशव मूर्ति की पूजा करने से निःसन्देह वांछित फल की सिद्धि होती है।

(२) शंख, पद्म, गदा, और चक्र धारण किये हुए को 'मधुसूदन' कहना। इनकी सेवा करने से शत्रुओं का नाश होता है।

(३) शंख, पद्म, चक्र और गदाधारी मूर्ति को 'संकर्षण' नाम से जानना चाहिए। इसे पूजित करने वाला मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता।

(४) शंख, गदा, चक्र और पद्म वाली मूर्ति 'दामोदर' नाम से जानी जाती है। इसका पूजन-अर्चन करने वाला प्रचुर द्रव्य, पुत्र, गोधन, धन और धान्य से परिपूर्ण होता है।

(५) शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाली मेरी मूर्ति को 'वामन' कहा जाता है। यह मूर्ति जिसके घर में रहती है वह मनुष्य सदा धनवान् रहता है।

(६) शंख, गदा, पद्म और चक्रधारी मेरी मूर्ति 'प्रद्युम्न' नाम की होती है। इसे पूजने वाला बहुत धनी होता है।

दूसरे क्रम में ऊपर के बॉये हाथ से प्रारम्भ कर विष्णु की निम्न ६ मूर्त्तियों के स्मरण करने मात्र से पाप राशियाँ बिलाय जाती हैं वह इस क्रम से है :–

(१) शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त मेरी 'विष्णु' मूर्त्ति की पूजा करने से मनुष्य श्रीमान् होता है।

(२) शख, पद्म, गदा और चक्र से सुशोभित 'माधव' मूर्ति का पूजक बड़ी सम्पत्ति वाला होता है।

(३) शंख, पद्म, चक्र और गदा धारी 'अनिरुद्ध' मूर्त्ति की पूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

(४) शंख, गदा, चक्र और पद्मधारी 'पुरुषोत्तम' की मूर्ति होती है।

(५) शंख, चक्र, पद्म और गदा वाली जन्मदुःख हारिणी 'अधोक्षज' मूर्त्ति है।

(६) शंख कौमोदकी, गदा, पद्म और चक्रधारी 'जनार्दन' की मूर्त्ति होती है।

तीसरे क्रमानुसार नीचे के बाँयें हाथ से गोविन्द आदि ६ मूर्तियों का भेद इस प्रकार है :–

(१) शंख, चक्र, गदा और पद्म धारी 'गोविन्द' की मूर्त्ति कही जाती है।

(२) लक्ष्मी के उपास्य लोग शंख, पद्म, गदा और चक्रधारी त्रिविक्रम की पूजा करते हैं।

(३) शंख, पद्म, चक्र और गदाधारी 'श्रीधर' की मूर्त्ति भी 'श्री' अर्थात् लक्ष्मी के प्राप्त हेतु पूजनीय है।

(४) शंख, गदा, चक्र और पद्मधारी 'हृषीकेश' मूर्त्ति कही जाती है।

(५) शंख, चक्र, पद्म और गदाधारी 'नृसिंह' की मूर्त्ति होती है।

(६) शंख, गदा, पद्म और चक्रधारी 'अच्युत' की मूर्त्ति होती है।

चौथे क्रम में नीचे के दहिने हाथ के क्रम से 'वासुदेव' की ६ मूर्तियों का भेद इस प्रकार से है—

(१) शंख, चक्र, गदा और पद्म से सुशोभित मूर्ति 'वासुदेव' की कही जाती है।

(२) शंख, पद्म, गदा और चक्रधारी मूर्ति को 'नारायण' कहा जाता है।

(३) शंख, पद्म, चक्र और गदा धारण करने वाली मूर्ति 'पद्मनाभ' की मूर्ति होती है।

(४) शंख, गदा, चक्र और पद्म धारी 'उपेन्द्र' की मूर्ति होती है।

(५) शंख, चक्र, पद्म और गदा से परिपूर्ण 'हरि' की मूर्ति मनुष्यों के पापों का हरण करने वाली पूजनीय है।

(६) शंख, गदा, पद्म और चक्रधारी 'श्री कृष्ण' की मूर्ति होती है।

भगवान् विन्दुमाधव ने आगे कहा कि हे तपस्विन्! अपनी सब मूर्तियों का भेद मैंने तुम्हें बताया। इन भेदों को जानने वाला मनुष्य भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है।

मन्दराचल से गरुड़ का आगमन

श्री स्कन्द जी ने अगस्त्य ऋषि से कहा कि इस भाँति श्री विष्णु परम तपस्वी अग्नि बिन्दु से वार्ता कर ही रहे थे कि उसी समय अपने पक्षों (परों) से विपक्षों (पर हीनों) को दूर फेंकने वाले श्री गरुड़ जी मन्दराचल से वहाँ

आ पहुँचे। पहुँचते ही गरुड़ जी ने शीघ्रता से माधव को प्रणाम कर भगवान् त्रिलोचन के आगमन की बात कही।

इतना सुनते ही घबड़ा कर हृषीकेश कहने लगे कि 'महादेव कहाँ हैं?'

गरुड़ जी ने दूर दिखाते हुए कहा कि देखिये वे 'वृषभध्वज' हैं! जिनके ध्वज में लगे रत्नों की प्रभा सारे आकाश और भू-मण्डल में प्रकाशित हो रही है।

इसके पश्चात् 'पुण्डरीकाक्ष' भगवान महादेव के 'वृषभध्वज' से भूषित रथ को देखने लगे। जिसका दर्शन ही नयनों को सुफल करते हैं। मानों करोड़ों सूर्य के किरणों से दिग्मण्डल प्रकाशित हो रहा हो। उसके चारों ओर देवता लोग गगन-मण्डल को भरे रहे। उनके बाजों की ध्वनियों से पर्वतों की कन्दराएँ प्रतिध्वनित होती रहीं, विद्याधरियों द्वारा फेंकी गयी पुष्पांजलियों से सुगन्धित हो रहा है। उनको देख कर शंख, चक्र, पद्म व गदाधारी भगवान् श्री विष्णु हर्ष से पुलकित हो गये और दूर से ही उन्हें प्रणाम किये तथा उनकी अगवानी करने की इच्छा करने लगे।

अग्नि-बिन्दु 'दिव्यज्ञानी' बने

इसके पश्चात् मुदनिधान और मुक्ति प्रदाता भगवान विष्णु ने अग्नि-बिन्दु महर्षि से कहा कि यह सुदर्शन चक्र है इसे दाहिने हाथ से तुम स्पर्श करो, उसे छूते ही ऋषि 'दिव्यज्ञानी' हो गये।

श्री स्कन्द जी ने आगे कहा कि हे कुम्भज! इसके पश्चात् अग्नि बिन्दु ऋषि भगवान बिन्दुमाधव के सेवन से ज्योति रूप हो 'कौस्तुभधारी' के ज्योतिर्मय शरीर में लीन हो गये। हे अगस्त्य! जो लोग अपने मन को बिन्दु-माधव के चरण कमल का भौंरा बना देते हैं वे सब अग्नि-बिन्दु के समान हो जाते हैं। जो कोई काशी में वास कर भगवान 'बिन्दुमाधव' का दर्शन करता है, उनकी कथा सुनता है वह संसार की गति पर विजय प्राप्त कर लेता है। 'पंच-नद' की उत्पत्ति और 'बिन्दुमाधव' की कथा दोनों ही बड़े पवित्र हैं। इस पर से 'काशीपुरी' का वास बड़े पुण्य से प्राप्त होता है। जो कोई 'बिन्दुमाधव' के समक्ष 'अग्नि-बिन्दु' रचित स्तुति का पाठ करता है वह अपनी सारी वासना पूर्ण कर लक्ष्मीवान होता है।

अग्नि बिन्दु स्तोत्र
और आख्यान की महिमा

श्राद्ध पर ब्राह्मणों के भोजन करते समय इस उत्तम कथा को अवश्य पढ़ना चाहिए। विशेषकर 'पर्व' पर पवित्र 'पंचनद तीर्थ' के समीप 'पुण्यश्री' की समृद्धि हेतु इस आख्यान को अवश्य पढ़ना चाहिए। भोग तथा मोक्ष की समृद्धि के लिए 'बिन्दुमाधव' के प्रादुर्भाव का वृत्तान्त प्रयास कर पढ़ना चाहिए तथा भक्तिपूर्वक सुनना चाहिए। विष्णुवासर एकादशी तिथि को रात्रि में जागरण कर इस आख्यान को जो सुनता है वह 'वैकुण्ठ-लोक' में वास करता है।

इस प्रकार श्री स्कन्द पुराणन्तर्गत चतुर्थ 'काशीखण्ड' में वर्णित 'वैष्णव तीर्थ' महात्म्य और श्री विष्णु-मूर्ति भेद नामक ६१ वें अध्याय का भाषा में अनुवाद किया गया।

अध्याय ६२

काशी में विश्वनाथका आगमन और वृषभध्वज, कपिलधारा तीर्थ की महिमा

महर्षि अगस्त्य जी ने आगे की बात श्री स्कन्द जी से पूछते हुए कहा कि भगवान् विश्वनाथ के काशी में पदार्पण का क्रम जानने का कुतूहल मन में हो रहा है। कृपा पूर्वक उस पवित्र आख्यान का वर्णन करें साथ ही यह भी बतायें कि काशिराज दिवोदास के प्रति गरुड़ जी से श्री विष्णु जी के किये हुए व्यवहार को सुनकर आशुतोष भगवान् विश्वनाथ ने क्या कहा? उनके साथ मंदराचल से कौन-कौन गण 'काशी' आये?

इतना ही नहीं यह भी बतायें कि लज्जावश नीचे मस्तक किये हुए ब्रह्मा जी ने भगवान् शंकर का कैसे साक्षात्कार किया और 'शिव' ने उनसे क्या कहा?

शंकर-नन्दन श्री स्कन्द जी ने अगस्त्य ऋषि को तृप्त करने हेतु भगवान् महादेव तथा भगवती पार्वती का ध्यान कर प्रणाम करते हुए कहा कि हे अगस्त्य! सभी पापों तथा विघ्नों का हरण करने वाले उस मंगल प्रसंग को सुनो।

श्री हरि, गरुड़ से भगवान के आगमन का समाचार पाकर बड़े हर्षित हुए। यह समाचार देने के उपलक्ष में गरुड़ को श्री हरि ने बहुत पुरस्कार दे सम्मानित किया। इसके पश्चात् 'वाराणसी पुरी' के पूर्व द्वार से आगे समीप ही में प्रजापति श्री ब्रह्मा जी को अगुआ बनाकर सूर्य, गणपति, प्रमथगण और योगिनियों को साथ में लेकर भगवान् विष्णु 'श्री हर' के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगे।

वृषभध्वज भगवान् महादेव के नेत्रगोचर होते ही ब्रह्मा जी और लक्ष्मी पति श्री विष्णु ने उनको प्रणाम किया।

वृद्ध पितामह को झुक कर प्रणाम करते देख स्वयं प्रणत हो श्री विश्वनाथ ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। इस पर प्रजापति ने अपने दोनों हाथ उठाकर स्वस्ति वाचन किया। गीले अक्षत व फल आदि दिखाकर 'रुद्रसूक्त' पाठ से अभिमंत्रित किया। तदनन्तर श्री गणेश जी ने प्रणाम किया। भगवान ने बड़ी प्रसन्नता से उनका मस्तक सूंघा तथा मिलकर उन्हें अपने आसन पर बैठा लिया।

इतना होने के बाद सोमनन्दी आदि गणों ने उन्हें प्रणाम किया तथा योगिनियाँ मंगल गीत गाने लगीं। भगवान् सूर्य ने भी प्रमथनाथ को प्रणाम किया। बड़े आदर के साथ भगवान ने श्री विष्णु को अपने आसन के समीप बायीं ओर बैठाया तथा आसन देकर अपने दाहिनी ओर श्री ब्रह्मा जी को बैठाया। इसके प्रश्चात् विनीत गणों को देखा, मस्तक हिलाकर योगिनियों को सम्मानित किया। संकेत द्वारा बैठने को कह कर सूर्य को भी प्रसादित किया।

सबके यथा स्थान बैठने पर श्री ब्रह्मा जी ने हाथ जोड़कर कहा कि हे भगवान्! देव देवेश! गिरजापते! काशी आकर मैंने पुनः आपका दर्शन नहीं किया हमारे इस अपराध को आप कृपा-पूर्वक क्षमा करें।

हे चन्द्रभूषण! क्या कहूँ जरागस्त यदि कोई वृद्ध काशी प्राप्त कर ले तो भला वह उसे कैसे छोड़े। प्रकृत्या ब्राह्मण अपकार नहीं करता है। फिर स्वामी आपने ही चलते समय कहा था कि जानबूझ कर किसी 'धर्मपथावलम्बी' का अपकार न करना! इतना संकेत मिलने पर भला वह कौन बुद्धिमान् होगा जो मोक्षदात्री 'काशी' के रक्षक उस 'धर्मपथावलम्बी' काशिराज दिवोदास की बुद्धि फेर उनका अनिष्ट करता।

लिंग स्थापना से अपराधों की मुक्ति

पितामह के इन वचनों को सुन भगवान् महेश्वर ने प्रसन्नता के साथ हंसते हुए कहा कि हे ब्रह्मा! मैं यह सब जानता हूँ। इसमें आपका कोई दोष नहीं क्योंकि ब्राह्मण का 'ब्राह्मणत्व' ही धर्म है। आपने इस मोक्षदायिनी

काशी पुरी में–'दश-अश्वमेध यज्ञ' किये। यह सब जो किया सो ठीक ही किया उससे भी अधिक उत्तम कार्य आपने किया है मेरे लिंग की स्थापना कर! ऐसा करने से हजारों पाप दूर हो जाते हैं। सर्व अपराध युक्त व्यक्ति यदि किसी स्थान पर एक 'शिवलिंग' स्थापित कर देता है तो उसमें अपराध लेशमात्र भी नहीं रह जाता। इस भाँति दोष-पूर्ण ब्राह्मण को अपराधी बनाने वाले का ऐश्वर्य समाप्त हो जाता है।

सूर्य की प्रार्थना

भगवान् विश्वनाथ के इस मधुर वचन को सुन समस्त लोग एक-दूसरे को देख प्रमुदित होने लगे। अवसर जान चराचर को प्रकाश प्रदाता श्री भास्कर प्रणाम करते हुए उमाकान्त से कहने लगे कि मैंने यहाँ आकर हजार हाथ वाला होते हुए सब करने पर भी 'स्वधर्म पालक' काशिराज दिवोदास का कुछ बिगाड़ न कर सका। हे नाथ! अब तक अनेक रूप मैंने लिया और काशी में आपके आगमन की प्रतीक्षा करता रहा।

हे प्रभो! इतने काल तक मैंने मनोरथ रूपी वृक्ष को अपनी भक्ति रूपी जल से सींचा सो वृक्ष आज ध्यान-रूपी पुष्पों से सुशोभित हो रहा है। यह सब आपके दर्शन-फल में परिणत हो रहा है।

चन्द्रमौलीश्वर भगवान् ने कहा कि हे सूर्य! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यहाँ रह कर आपने मेरा ही कार्य किया है। राजा दिवोदास के राज्यकाल में कोइ 'देव' काशी में प्रवेश नहीं पाता था। इस भाँति सूर्य को कहते लज्जावनत अपने प्रमथादि गणों को भी 'श्री हर' ने आश्वस्त किया। भगवान ने लज्जा से गड़ी जा रही नतमस्तक योगिनियों की ओर भी कृपा दृष्टि डाल उन्हें सान्त्वना प्रदान किया।

हरि-हर

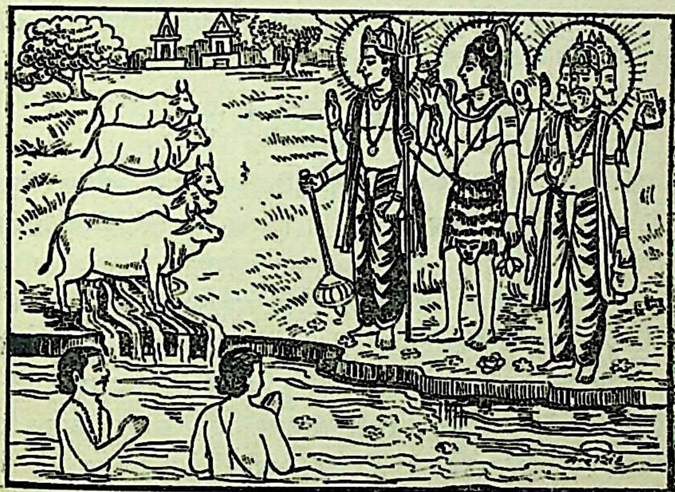
जब हर ने हरि की ओर देखा तो हरि ने हर से कुछ भी नहीं कहा। क्योंकि पहले ही भगवान् विश्वनाथ ने विष्णु और गणेश का वृत्तान्त गरुड़ से सुन लिया था।

गोलोक से कपिला

ठीक इसी समय 'गोलोक' से सुनन्दा, सुमना, सुरति, सुशीला और कपिला नामक पाँच गौ वहाँ आ गईं। भगवान् विश्वनाथ की उन पर स्नेहमयी दृष्टि पड़ते ही उनके स्तनों से दूध की धारा प्रस्फुटित हो मूसलधार दूध की धारा बहने लगी जिससे वहाँ पर स्थित पोखरी भर गयी।

क्षीर-समुद्र

काशी अधिपति भगवान शंकर के समस्त पार्षद उस दुग्धमय स्थल को 'क्षीर समुद्र' की भाँति देखने लगे। भगवान हर के वहाँ विराजमान होने से वह पोखरी विशाल 'तीर्थ' हो गयी।



कपिला-ह्रद

काशी अधिपति भगवान् विश्वेश्वर ने उस तीर्थ का नाम 'कपिला-ह्रद' रखा। श्री हर के आदेश से सभी सुरपुरवासी देवों ने उसमें स्नान किया। इसी समय उस तीर्थ में से 'पितृ-गण' प्रकट हो गये। पितरों को देख देवता प्रसन्न हो गये।

अग्निष्वात्ता, सोमपा, आज्यपा और बर्हिषद् आदि 'पितृगण' तीर्थ में दुग्ध से तृप्त होकर भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करने लगे कि हे भक्तों के अभय प्रदाता ! जगदीश्वर ! देव-देव ! इस तीर्थ में आपके विराजमान रहने से हम लोगों की अक्षय-तृप्ति हुई है। अतः हे शम्भो ! प्रसन्नचित्त से आशीर्वादात्मक 'वर' दें।

कपिला-तीर्थ की महिमा

दिव्य पितृ-गणों के वचन सुनकर काशी अधिपति भगवान 'काशीनाथ' ने प्रसन्नता से सबके समक्ष कहा कि हे महाबाहो ! विष्णो ! हे पितामह ! आप सब सुनो। जो लोग कपिला के दुग्ध से पूर्ण इस 'कपिल-तीर्थ, में श्रद्धाभक्ति के साथ पिण्ड-दान करेंगे। उनके पितृगणों की पूर्ण तृप्तिहोगी। सोमवार से युक्त अमावास्या तिथि में इस तीर्थ में श्राद्ध करने से अक्षय फल की प्राप्ति होगी।

गया श्राद्ध का आठ-गुना फल

भगवान् महादेव ने कपिला तीर्थ की महिमा का आगे वर्णन करते हुए बताया कि सोमवती अमावास्या को यदि यहाँ श्राद्ध कर लिया जाये तो फिर 'पुष्कर' में अथवा 'गया' में श्राद्ध करने की अपेक्षा न होगी। पितरों की तृप्ति हेतु जो लोग इस तीर्थ में 'कपिला-गौ' का दान करेंगे उनके पितर लोग 'क्षीरोद' (क्षीर सागर) के तीर पर वास करेंगे। जो मनुष्य इस—वृषभध्वज तीर्थ, पर 'वृषोत्सर्ग' करेगें उनके पितर लोग 'अश्वमेध-यज्ञ' के पुरोडाशों से तर्पित होंवेगे। हे पितामह गण ! इस कपिलधारा तीर्थ में सोमवती अमावास्या में श्राद्ध करने पर 'गया-श्राद्ध' का आठगुना पुण्य अधिक प्राप्त होगा। जो जीव दाँत निकलने से पूर्व अथवा गर्भपात होने के कारण मरते हैं उनकी तृप्ति यहाँ के श्राद्ध से होगी। यज्ञोपवीत या विवाह से पूर्व मृत्य हुए को भी यहाँ के पिण्डदान से अक्षय तृप्ति होगी। आग लगने से मृत्यु हुई हो अथवा किसी कारणवश जिनके शव का दाह न हुआ हो उन सबकी तृप्ति इस 'कपिलधारा तीर्थ' में श्राद्ध करने से हो जाएगी। जिनकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न न हुई हो या 'षोडषश्राद्ध' न हुआ हो उनकी भी तृप्ति इस 'घृतकुल्या'

तीर्थ में श्राद्ध करने से होगी। जो लोग विना पुत्र के ही मर जाते हैं या जिसे कोई पानी देने वाला नहीं होता उनकी भी तृप्ति इस मधुस्त्रवा तीर्थ में तर्पण करने से हो जाएगी। चोर, बिजली के लगाने से, जल में डूबने या अपघात से जिसकी मृत्यु हो जाती है उन्हें भी यहाँ श्राद्ध करने से उत्तम गति मिलती है।

जिन पापियों ने अपनी आत्म-हत्या कर ली हो उनकी भी तृप्ति इस 'शिवगया-तीर्थ' में पिण्ड-दान करने से होगी। पिता के गोत्र में अथवा माता के गोत्र में जिन लोगों की मृत्यु हो गयी हो और उनका नाम विदित न हो तो उनकी भी तृप्ति यहाँ पर पिण्ड-दान करने से हो जाएगी। पत्नी वर्ग में अथवा मित्र-मण्डल में मरे हुए लोगों की भी तृप्ति इस तीर्थ में तर्पण करने से होगी। चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रीय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र या अन्त्यज ही क्यों न हो जिस किसी का नाम लेकर 'पिण्ड' दिया जाएगा उसका भी उद्धार हो जाएगा। जिनके 'पितर' पशु-पक्षि या पिशाच योनि में यदि होंगे तो भी यहाँ के पिण्डदान के प्रभाव से उस योनि से वह छूट कर उच्च-गति को प्राप्त होंगे इस मधुस्त्रवा तीर्थ में तर्पण करने पर 'मृत्युलोक' में जिनके पितर होंगे वे सब 'ब्रह्मलोक' में चले जाते हैं तथा 'दिव्यलोक' वासी पितृगण 'देवत्व' को प्राप्त होते हैं।

कपिलधारा को वाराणसी में समझें

हे देव गण ! यह तीर्थ सत्ययुग में 'दुग्घमय' त्रेत्रा में 'मधुमय', द्वापर में 'घृतमय' तथा कलियुग में 'जलमय' रहेगा। यह कपिल–तीर्थ पवित्र 'वाराणसी-पुरी' की सीमा से वाहर रहते हुए भी मेरे सान्निध्य के प्रभाव से इस 'प्रधान तीर्थ' को 'वाराणसी' में ही समझा जाएगा।

भगवान् ने आगे कहा कि हे पितामहगण ! चूँकि समस्त काशी वासियों ने इसी स्थान पर वृषभ-युक्त मेरी ध्वजा को देखा है अतः मैं इस स्थान पर पर अपनी ध्वजा के नाम से ही सदा वास करूंगा। हे पितरगण ! आप लोगों के सन्तोषार्थ यहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और अपने पार्षदों के साथ मैं सदा निवास करूंगा।

भगवान विश्वनाथ का 'रथ'

जिस समय यह वरदान भगवान दे रहे थे उसी समय प्रमुख पार्षद नन्दी ने आकर प्रणामपूर्वक निवेदन करते हुए कहा कि भगवन्! आपका विजयोदय हो। आपके आज्ञानुसार 'रथ' सुसज्जित हो गया है। उस रथ में प्रकृति रूप से आठ सिंह, धातुरूप आठ बैल, दिग्गज रूप आठ हाथी तथा आठ (चित्त, अहंकार, बुद्धि तथा पांच ज्ञानेन्द्रीय रूपी) घोड़ो को वश में किये 'मन' चाबुक लिये सारथी बना बैठा है। उस रथ में दण्ड स्वरूपा गंगा और यमुना हैं। पवन पहिया तथा प्रभात और सन्ध्या रूप दो चक्र लगे हैं। उस पर आकाश रूपी छत्र लगा है। तारागण कीलों के स्थान पर जड़े हैं। रस्सी के स्थान पर सर्पगग शोभायमान हैं।

उस रथ में मार्गदर्शिनी ! प्रकाश (लालटेन) रूप में श्रुति, रथ गुप्ति (टफ) के स्थान पर स्मृतियाँ, धूरा के रूप दक्षिणा, अभिरक्षक (सईस) के स्थान या 'यज्ञ गण' आसन की जगह प्रणव तथा पावदान के स्थान पर गायत्री अधिष्ठित हैं। सीढ़ियों के स्थान पर स्रोता व्याहृतियाँ, सूर्य और चन्द्र द्वार रक्षक रूप में श्वेत हैं। मकर तुण्डरूप अग्निदेव, रथ. भूमि, चन्द्रमा, ध्वज, दण्ड के स्थान पर महान सुमेरु, पताका में सूर्य की प्रभा शोभायमान है। चंचल चामर लिए स्वयं वाग्देवी ही खड़ी हैं।

श्री स्कन्द जी ने आगे का वर्णन करते हुए कहा कि नन्दी से इतना सुनकर भगवान, पिनाकधारी, अपने हाथ में धनुष लिए नारायण का हाथ पकड़े खड़े थे हुए इसी समय आठो देवमाताएँ आरती उतारने लगीं। चारण लोग मंगल गीत उच्चरित करने लगे, दिव्य वाद्य बजने लगे इनकी ध्वनि इतनी गुंजित होने लगी कि वह स्वर्ग ओर मृत्यु लोक में व्याप्त हो गयी। इस पर समस्त भुवनोंमें रहने वाले लेग निमंत्रितों की भाँति 'काशी यात्रा'के निमित्त निकल पड़े। उस समय तैंतिस कोटि देव, बीस हजार करोड़ गण, नव करोड़ चामुण्डा, एक करोड़ भैरवी, आठ करोड़ बली मयूरवाहन रूप षणमुख मेरे अनुचर साथी व कुमारगण, चमकीले कुठार धारण किये सात करोड़ बड़े तोंद बाले गजमुख गण, छियासी हजार ब्रह्मवादी मुनिगण, इतनी ही संख्या

में गृहस्थ धर्मावलम्बी ऋषि गण, तीन करोड़ पातालवासी नागगण, दो करोड़ शैवगण, और दो करोड़ दानवगण, आठलाख गन्धर्व, पचास लाख यक्ष और राक्षसगण, दो लाख दस हजार विद्या धरगण, साठ हजार अप्सराएं, आठ लाख गौ माताएं, साठ हजार गरुड़ गण, विविध रत्नों का उपहार लिए सात समुद्र, अस्सी हजार नदियाँ, आठ हजार पर्वतगण, तीन सौ वनस्पति गण, और आठो दिक्पाल उस स्थान पर तत्काल पहुँच गये।

भगवान विश्वनाथ का काशी में प्रवेश

सब की स्तुति सुनते हुए तथा सबकी ओर कृपा दृष्टि डालते हुए भगवान रथारूढ़ हुए और मनोमुग्ध हारी 'काशीपुरी' में प्रवेश किया। प्रवेश करते समय मुद-मंगल की खान और स्वर्ग से भी रमणीय वाराणसी पुरी की शोभा को प्रसन्न चित्त हो भगवान त्रिलोचन तथा भगवती पार्वती इधर-उधर देखने लगीं।

शिव सायुज्य पद की प्राप्ति

श्री स्कन्द जी ने आगे कहा कि हे अगस्त्य ! जो लोग इस पुण्यमयी आख्यान को पढ़ेंगे या पढ़वा कर सुनेंगे वे सब 'शिव सायुज्य' पद को प्राप्त होंगे। विशेष कर श्राद्ध के समय इस आख्यान को आवश्य पढ़ना चाहिए। इसके पाठ से पितरों को अक्षय परम सनतुष्टि होती है।

पुत्रहीन 'पुत्रवान' बनते हैं

श्री स्कन्द जी ने आगे कहा कि एक वर्ष तक भगवान शिव के समक्ष इस आख्यान को श्रद्धा-भाक्ति के साथ पढ़ने वाला अपुत्रवान पुत्रवान होता है। भगवान के काशी प्रवेश का यह आख्यान 'परम आनन्द' कन्द का बीज है। जो कोई नियम के साथ पढ़कर नव-ग्रह में प्रवेश करेगा वह सब प्रकार के सुखों से परिपूर्ण होगा। इसे सुनकर जब स्वयं भगवान विश्वनाथ प्रसन्न होते हैं तो अन्य लोगों की कौन कहे। यह आख्यान सर्वविध हर्ष प्रदायक है।

इस वर्णन में भगवान विश्वनाथ की दुलर्भ काशी प्रवेश का वृत्तान्त कहा गया है। अतः जो अत्यन्त असम्भव अभिलाषा हो वह भी इसके निरंतर पाठ करने से पूर्ण होती है।

इस प्रकार श्री स्कन्द पुराणान्तर्गत चतुर्थ काशी खण्ड में वर्णित भगवान विश्वेश्वर का काशी प्रवेश, वृषभध्वज प्रादुर्भाव एवं कपिलधारा तीर्थ वर्णन नामक ६२ वें अध्याय का भाषा में अनुवाद किया गया।



अध्याय ६३

ज्येष्ठेश्वर और जैगीषव्य

अगस्त्य ऋषि ने आगे की जिज्ञासा व्यक्त करते हुए पूछा कि हे दयानिधे! कृपा पूर्वक अब यह बतायें कि सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली, सर्वानन्दकरी प्रवित्र 'काशी पुरी' को देख कर भगवान् 'त्रिपुरारी' ने क्या किया ?

श्री स्कन्द जी ने अगस्त्य ऋषि के जिज्ञासा को तृप्त करते हुए कहा कि हे पतिव्रतापते ! अगस्त्य ! भगवान् विश्वनाथ ने 'काशी' को अपने नेत्र की पाहुनी बनाया और सर्व प्रथम उन्होंने एक गुफा में बैठे महामुनि 'जैगीषव्य' को देखा। जब भगवान् मन्दराचल पर भगवती गिरिजा के साथ गये थे उसी समय से ये ऋषि अत्यन्त कठिन व्रत धारण कर प्रतिज्ञा किये थे कि जब तक भगवान् त्रिलोचन के चरण कमल का पुनः दर्शन मैं नहीं कर लूंगा तब तक एक बूंद जल भी ग्रहण न करूंगा और न कुछ खाऊंगा।

हे कुम्भज ! कह नहीं सकता कि योगिराज श्री जैगीषव्य किसी योगबल अथवा भगवान् विश्वनाथ के अनुग्रह से वहाँ बैठे तप कर रहे थे। इस घटना को मात्र भगवान् ही जानते थे। अन्य को कुछ भी इसका पता नहीं था। अतः भगवान् उसकी ओर ही सर्व प्रथम गये।

जिस दिन भगवान् विश्वाथ का काशी में पुनः पदार्पण हुआ उस दिन ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी थी तथा अनुराधा नक्षत्र रहा। अतः ऐसा योग जब मिले तब ज्येष्ठ क्षेत्र की यात्रा अवश्यमेव करनी चाहिए क्योंकि भगवान् ने उस दिन वहाँ की यात्रा की थी। तभी से वह सारा क्षेत्र 'ज्येष्ठ-क्षेत्र' नाम से विख्यात हुआ। इतना ही नहीं उस दिन एक शिव लिंग वहाँ अपने आप प्रकट हो गया। सूर्य के उदय होने पर जिस

भाँति अंधकार का नाश हो जाता है उसी भाँति सबके जन्म भर के पाप राशि का तत्काल नाश हो गया।

जो लोग उस स्थान पर स्थित ज्येष्ठ-वापी में स्नान कर पितृगणों का तर्पण करने के बाद भगवान् ज्येष्ठेश्वर का दर्शन करते हैं उन्हें पुनः पृथ्वी पर जन्म नहीं लेना पड़ता। उसी स्थान पर सर्व सिद्धियों को प्रदान करने वाली भगवती 'ज्येष्ठा गौरी' का स्थान है। समस्त व्यक्तियों की समृद्धि हेतु ज्येष्ठ मास की शुक्ल अष्टमी को वहाँ पर भगवती का पूजन तथा रात्रि जागरण करना चाहिए। अत्यन्त हत भागिनी स्त्री भी ज्येष्ठवापी में स्नान कर ज्येष्ठा गौरी का दर्शन कर सौभाग्यवती होती जाती है।

ज्येष्ठत्य पद की प्राप्ती

उसी स्थान पर भगवान् विश्वनाथ के निवास करने के कारण एक दूसरा लिंग 'निवासेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हो गया है। इनका दर्शन करने से घर में सदा सभी सम्पत्तियों का निवास रहता है। जो मनुष्य घृत, मधु आदि से विधि-विधान के साथ वहां पर श्राद्ध करता है वह अपने पितरों को सबसे ज्येष्ठ तृप्ति से सन्तुष्ट कर देता है। काशी के इस ज्येष्ठ-तीर्थ के तीर पर अपने शक्ति के अनुसार दान करने से मनुष्य ज्येष्ठ गति को प्राप्त करता है और अन्त में मुक्त हो जाता है। काशी में ज्येष्ठेश्वर तथा ज्येष्ठा गौरी की सर्वप्रथम पूजा करने से सर्वत्र ज्येष्ठत्व पद की प्राप्ति होती है।

हे अगस्त्य! उस स्थान पर पहुँचकर भगवान् ने जब जैगीषव्य ऋषि की गुफा देखी तब उन्होंने 'नन्दी' को बुलाकर कहा कि हे नन्दिन्! उस मनोहर गुफा में जाकर जैगीषव्य नामक तपस्वी को जो कि कठोर नियम धारण किये हुए हैं जिससे उनकी खाल, नस और हाड़ मात्र शेष रह गया है, मेरे दर्शन हेतु उन्हें उठा लाओ। जब से मैं मन्दराचल गया हूँ तब से इस तपस्वी ने अन्न-जल का परित्याग कर रखा है। अमृत के सदृश पोषक इस नील कमल को तुम ले लो और उनके सारे शरीर में स्पर्शन करा देना।

इतनी आज्ञा सुन नन्दी ने नील कमल ले भगवान धूर्जटी को प्रणाम किया। फिर गुफा में घुस कर तपोरूपी अग्नि से शुष्कांग वह मुनि धारणा में

दृढ़ चित्त रहने के कारण बाह्य ज्ञान से शून्य था। उस मुनिको सर्वांग में नील-कमल का स्पर्श कराया जिस भांति वृष्टि होने पर खोहों में मेढक फुदुकनेल गते हैं उसी भाँति कमल स्पर्श से मुनि का अंग-प्रत्यंग उल्लसित होने लगा। इतना होते ही मुनि को नन्दी ने अपनी गोद में उठा लिया और तत्काल भगवान् के समक्ष लाकर रख दिया। इसके पश्चात् चेतना आते ही घबड़ाये



हुए मुनि ने अपने सामने वामभाग में बैठी पार्वती के साथ भगवान का शोभामय दर्शन किया। देखते ही मुनि ने भूमिपर साष्टांग प्रणाम किया। और भगवान् की स्तुति की।

जैगीषव्य उवाच—

नमः शिवाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने।
जगदानन्दकन्दाय परमानन्दहेतवे॥
अरूपाय सरूपाय नानारूपधराय च।
विरूपाक्षाय विधये विधिविष्णुस्तुताय च॥

स्थावराय नमस्तुभ्यं जङ्गमाय नमोऽस्तु ते ।
सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ॥
नमस्त्रैलोक्यकाम्याय कामाङ्गदहनाय च ।
नमोऽशेषविशेषाय नमः शेषाङ्गदाय ते ॥
श्रीकण्ठाय नमस्तुभ्यं विषकण्ठाय ते नमः ।
वैकुण्ठवन्द्यपादाय नमोऽकुण्ठितशक्तये ॥
नमः शक्त्यर्धदेहाय विदेहाय सुदेहिने ।
सकृत्प्रणाममात्रेण देहिदेहनिवारिणे ॥
कालस्य कालकालाय कालकूटविषादिने ।
व्यालयज्ञोपवीताय व्यालभूषणधारिणे ॥
नमस्ते खण्डपरशो ! नमः खण्डेन्दुधारिणे ।
खण्डिताशेषदुःखाय खड्गखेटकधारिणे ॥
गीर्वाणगीतनाथाय गङ्गाकल्लोलमालिने ।
गौरीशाय गिरीशाय गिरिशाय गुहारणे ॥
चन्द्रार्धशुद्धभूषाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे ।
नमस्ते चर्मवसन ! नमो दिग्वसनाय ते ॥
जगदीशाय जीर्णाय जराजन्महराय ते ।
जीवाय ते नमस्तुभ्यं जम्भयूकादिहारिणे ॥
नभोडमरुहस्ताय धनुर्हस्ताय ते नमः ।
त्रिनेत्राय नमस्तुभ्यं जगन्नेत्राय ते नमः ॥
त्रिशूलव्यग्रहस्ताय नमस्त्रिपथगाधर ! ।
त्रिविष्टपाधिनाथाय त्रिवेदीपठिताय च ॥
त्रयीमयाय तुष्टाय भक्ततुष्टिप्रदाय च ।
दीक्षिताय नमस्तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ॥
दारिताशेषपापाय नमस्ते दीर्घदर्शिने ।
दूराय दुरवाप्याय दोषनिर्दलनाय च ॥
दोषाकरकलाधार ! त्यक्त दोषागमाय च ।
नमो धूर्जटये तुभ्यं धत्तूरकुसुमप्रिय ! ॥

नमो धीराय धर्माय धर्मपालाय ते नमः ।
नीलग्रीव ! नमस्तुभ्यं नमस्ते नीललोहित ! ॥
नाममात्रस्मृतिकृतां त्रैलोक्यैश्वर्यपूरक ।
नमः प्रमथनाथाय पिनाकोद्यतपाणये ॥
पशुपाशविमोक्षाय पशूनां पतये नमः ।
नामोच्चारणमात्रेण महापातकहारिणे ॥
परात्पराय पाराय परापरपराय च ।
नमोऽपारचरित्राय सुपवित्रकथाय च ॥
वामदेवाय वामार्धधारिणे वृषगामिने ।
नमो भर्गाय भीमाय नतभीतिहराय च ॥
भवाय भवनाशाय भूतानां पतये नमः ।
महादेव ! नमस्तुभ्यं महेश ! सहसां पते ॥
नमो मृडानीपतये नमो मृत्युञ्जयाय ते ।
यज्ञारये नमस्तुभ्यं यक्षराजप्रियाय च ॥
यायजूकाय यज्ञाय यज्ञानां फलदायिने ।
रुद्राय रुद्रपतये कद्रुद्राय रमाय च ॥
शूलिने शाश्वतेशाय श्मशानावनिचारिणे ।
शिवाप्रियाय शर्वाय सर्वज्ञाय नमोऽस्तु ते ॥
हराय शान्तिरूपाय क्षेत्रज्ञाय क्षमाकर ।
क्षमाय क्षितिहर्त्रे च क्षीरगौराय ते नमः ॥
अन्धकारे ! नमस्तुभ्यमाद्यन्तरहिताय च ।
इडाधाराय ईशाय उपेन्द्रेन्द्रस्तुताय च ॥
उमाकान्ताय उग्राय नमस्ते ऊर्ध्वरेतसे ।
एकरूपाय चैकाय महदैश्वर्यरूपिणे ॥
अनन्तकारिणे तुभ्यमम्बिकापतये नमः ।
त्वमोङ्कारो वषट्कारो भूर्भुवःस्वस्त्वमेवहि ॥
दृश्यादृश्यं यदत्रास्ति तत्सर्वं त्वमुमाधव ! ।
स्तुतिं कर्तुं न जानामि स्तुतिकर्ता त्वमेवहि ॥

वाच्यस्त्वं वाचकस्त्वं हि वाक्तत्वं प्रणतोऽस्मि ते।
नान्यं वेद्मि महादेव ! नान्यं स्तौमि महेश्वर ! ॥
नान्यं नमामि गौरीश ! नान्याख्यामाददे शिव !।
मूकोऽन्यनामग्रहणे बधिरोऽन्यकथाश्रुतौ ॥
पङ्गुरन्याभिगमनेऽस्म्यन्धो ऽन्यपरिवीक्षणे ।
एक एव भवानीश ! एकः कर्ता त्वमेवहि ॥
पाता हर्ता त्वमेवैको नानात्वं मूढकल्पना।
अतस्त्वमेव शरणं भूयो भूयः पुनः पुनः ॥
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर महेश्वर !।
इति स्तुत्वा महेशानं जैगीषव्यो महामुनिः ॥
वाचं यमोऽभवत्स्थाणोः पुरतः स्थाणुसन्निभः।
इति स्तुतिं समाकर्ण्य मुनेश्चन्द्रविभूषणम् ॥
उवाच च प्रसन्नात्मा वरं ब्रूहीतिनं मुनिम्।

अर्थात् जो शिव, शान्त, सर्वज्ञ, शुभमय, जगदानन्द, परमानन्द देने वाले रूप रहित होकर भी रूपवान् बन अनेक रूप धारण करने वाले, विधि स्वरूप, ब्रह्मा व विष्णु द्वारा स्तुत्य, विरूपाक्ष हैं मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

हे नाथ ! आप ही स्थावर और जंगमरूप हैं, आपही सर्वज्ञ और परमात्मा हैं आपको नमस्कार है। त्रैलोक्य मात्र को आपही कमनीय, कामदेव को भस्म करने वाले, शेष-विशेष से विहीन, शेषनाग को अपना बाजुबन्द (बिजायट) बनाए हैं, आपको प्रणाम है।

हे श्री कण्ठ ! आपके कण्ठ में विष शोभित है आपके चरणों की वंदना स्वयं वैकुण्ठनाथ सदा करते हैं, आपकी शक्ति कभी कुण्ठित नहीं होती ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ। स्वयं शक्ति ही आपके वामांग में विराजमान है। आप देह विहीन होते हुए भी दिव्य देहधारी हैं। जो देहधारी एक बार आपको प्रणाम करता है वह आपकी कृपा से पुनः देह नहीं धारण करता ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभो ! आप ही कलि और काल के भी काल 'महाकाल' हैं, जगत् के हितार्थ ही आपने 'कालकूट विष' का पान किया है, आभूषण ओर यज्ञोपवीत के स्थान पर आपने विषधरों को ही धारण कर रखा है।

हे खण्डपरशो ! आपने चन्द्र के खण्ड को अपने मस्तक पर धारण किया है, समस्त दुखों का आपही खण्डन करते हैं खड्ग और खेटक (ढाल) धारी आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

सभी देवगण आपका गुणगान करते हैं, आपके ही जटा-जूट में गंगा की तरंग मालाएँ उठा करती हैं, आप ही गौरी के नाथ हैं, आप गिरीशायी हैं और गिरिगणों के नायक हैं, मस्तक पर अर्धचन्द्र सुशोभित होते हुए भी पूर्ण चन्द्र, सूर्य, और अग्नि आपके तीनों नेत्र हैं, हे कृत्तिवासः ! दिगम्बर ! आप को नमस्कार करता हूँ।

हे जगदीश ! आप पुराण पुरुष तथा भक्तों के जरा-जन्म हारी, पापों का नाश करने वाले, एवं जीवरूप धारण करने वाले हैं। हे गंगाधर ! आप संसार के स्वयं नेत्र होते हुए त्रिनेत्र-धारी हैं। आपके कर में डमरू, पिनाक और त्रिशूल शोभायमान हो रहा है। आपही त्रिविष्टपवासी देवताओं के अधिनाथ हैं। तीनों वेदों में आपकी महिमा गायी गयी है, आप त्रयीमयं है, परम संतुष्ट हैं, भक्तों के परम सन्तोषप्रदाता हैं, दीक्षित एवं देवताओं के भी देवता हैं अतः मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

हेदूरदर्शिन् आपही समस्त पापों को दूर करते हैं और स्वयं सबसे दूरवर्ती रहते हैं। आपही दोषों के दलन करने वाले हैं, आप दुलर्भ हैं ऐसें आपका मैं नमन करता हूँ।

हे चन्द्रकलाधर ! आप समस्त दोषों से रहित हैं। हे धत्तूरपुष्पप्रिय धूर्जटे। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे नीलकण्ठ। आपही धैर्य धर्म, कर्म के पालक हैं। हे नीललोहित ! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

आपका जो नाम मात्र लेता है। उसे त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से विभूषित करनें वाले हैं, आप पिनाकोद्यतप्राणि प्रथमनाथ हैं आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

आपही पशु-पाश को काटने वाले पशुपति हैं, आपका नामोच्चरण करने वालों के महान् पापों के आप ही हरण-कर्त्ता हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

आपही परात्पर और संसार सागर के पार स्वरूप हैं, आप ही तो 'पर' और 'अपर' से 'परे' रहते हैं, आपका चरित्र अपार तथा कथा परम पवित्र है। आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

आपही वामदेव, बामार्धधारी, वृषभगामी, भर्ग, भीम और प्रणतजनों के भयहारी हैं मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

हे महादेव! आप सब तेजों के स्वामी महेश्वर, भव व भवनाशक भूत-पति हैं अतः आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

आप पार्वती के पति और मृत्युंजय हैं, आपही दक्ष के यज्ञ विध्वंसक हैं, यक्षराज कुबेर के परम प्रिय हैं आपको प्रणाम है।

आपही यज्ञपुरुष, यज्ञकर्त्ता, यज्ञों के फलदाता हैं, रुद्र, रुद्रपति और कुत्सित रोदन के मिटाने वाले एवं सम्पत्ति दाता हैं। आपही त्रिशूलधारी शाश्वत ईश्वर और श्मशान भूमि में विचरण करने वाले हैं, पार्वती के वल्लभ, शर्व और सर्वज्ञ है आपको प्रणाम है।

हे क्षमाकर! आपही हर, क्षमामूर्ति, क्षेत्रज्ञ, समर्थ क्षतिहर्त्ता तथा क्षीर के समान गौर वर्ण वाले हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है।

हे अन्धकासुर के नाशक! आप आदि और अन्त रहित हैं, आपही 'इडा' के आधार, ईश और इन्द्र तथा उपेन्द्रादि देवताओं द्वारा स्तुत्य हैं ऐसे आपको प्रणाम करता हूँ।

आप ही उमा के कान्त हैं, उग्र, उर्ध्वरेता अकेले एवं एक रूप तथा बड़ी सम्पत्तियों के देने वाले हैं आपको प्रणाम करता हूँ।

आप अनन्त कार्यों के कर्त्ता हैं, आप अम्बिका भवानी के स्वामी हैं, आपही प्रणव, वषट्कार, भूः भुवः स्वः हैं। ऐसे आपको बारम्बार प्रणाम है।

हे उमानाथ! इस संसार में जो भी दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थ है वह सब आपही हैं। हे प्रभो! मैं आपकी स्तुति करूं ऐसा सामर्थ्य मुझमें नहीं

है। यहाँ तो आपही वाच्य, वाचक और वचन हैं, अतः मैं मात्र आपही को प्रणाम करता हूँ। हे महादेव! मैं तो आपके सिवाय अन्य को जानता ही नहीं अतएव दूसरे की स्तुति करने का प्रश्न ही नहीं उठता। हे गौरीश! दूसरे को मैं प्रणाम नहीं करता, इतना ही नहीं हे शिव! मैं किसी अन्य का नाम भी नहीं लेता हूँ, दूसरे का नाम लेने में मैं गूंगा तथा कथा सुनने में बहरा हूँ। दूसरे के पास जाने में पगुल, देखने में अन्धा हूँ। आप ही मेरे स्वामी हैं, कर्त्ता हैं, हर्त्ता एवं पालन करने वाले हैं। अनेकत्व की कल्पना तो मूर्ख जन करते हैं। अतएव हे महेश्वर! मैं आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ। मैं आपही की शरणागत हूँ। मैं संसार सागर में डूब रहा हूँ। आप मेरा उद्धार करें।

श्री स्कन्द जी ने कहा कि हे अगस्त्य। इस भाँति जैगीषव्य ऋषि भगवान् की प्रार्थना कर ठूँठे वृक्ष की भाँति भगवान् के समक्ष खड़े रहे तब चन्द्र भूषण ने प्रसन्न होकर कहा—कि वर मांगो।

जैगीषव्य ऋषि ने कहा कि हे प्रभो! हे भवानीश! देव-देव! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मैं यही चाहता हूँ कि आपके चरण कमल से मैं कभी दूर न रहूँ। हे नाथ! और एक वर आप बिना विचार किये देने की कृपा करें कि जिस लिंग को मैंने स्थापित किया है उसमें आप सदैव वास करें।

जैगीष्य को भगवान का वरदान

ऋषि का वचन सुनकर भगवान् विश्वनाथ ने कहा हे अनघ! महा भाग! जैगीषव्य! आपने जो कहा वह तो होगा ही पर मैं अपनी ओर से यह वर रूप में निर्वाण साधक 'योगशास्त्र' का प्रदान करता हूँ। इससे आप समस्त योगियो के बीच 'योगाचार्य' होंगे। हे तपोनिधे, मेरे प्रसाद से तुम योगशास्त्र के समस्त गूढ़ तत्वों को भली प्रकार समझ सकोगे और अन्त में निर्वाण गति को प्राप्त होगे। जिस भाँति नन्दी, भृंगी और सोमनन्दी हैं उसी प्रकार तुम भी जरा, मरण से रहित हो हमारे परम भक्त होगे। वैसे तो

अनेकानेक व्रत, नियम, तप दान आदि कल्याण के लिए साधक और पाप कर्म में बाधक पहुँचाने वाले होते हैं। आपने जो नियम धारण किया है वह बड़ा साहस पूर्ण है।

मेरा दर्शन करने के पश्चात् भोजन करने का नियम उत्तम है। जो मेरा बिना दर्शन किये भोजन करता है मानों वह पाप ही को खा रहा हैं। जो कोई पत्र-पुष्प फल इत्यादि से मेरा पूजन किये बिना खाता-पीता है वह २१ जन्म तक रेतोभक्षी होता है। आपने जिस नियम की धारणा की है उसके १६ वँ अंश तक भी अन्य व्यक्ति नियम-यम नहीं पहुँच सकते! तुम मेरे चरणों के समीप रहो। अन्त में तुम्हें निर्वाण की प्राप्ति होगी।

काशी में परम दुर्लभ 'जैगीषव्येश्वर' लिंग का ३ वर्ष तक सेवा करने से योग की निःसन्देह प्राप्ति होगी। जो व्यक्ति आपकी गुफा में जाकर योगाभ्यास करेगा वह मेरी कृपा से ६ मास में अभीष्ट सिद्धी को प्राप्त कर लेगा। जिन्हें सिद्धि को अभिलाषा हो वे जैगिषव्यश्वर' की पूजा तथा गुफ का दर्शन करे।

भगवान् ने आगे कहा कि इस ज्येष्ठ क्षेत्र में आपके द्वारा स्थापित शिव लिंग सर्वसिद्धियों का प्रदाता होगा। इसके दर्शन, पूजन व स्पर्श से पाप-राशि समाप्त हो जाती है। इस ज्येष्ठश्वर क्षेत्र में एक शिवयोगी को भोजन कराने से करोड़ों जनों को भोजन कराने का पुण्य अर्जित होगा 'जैगिषव्येश्वर' लिंग को तो कलियुग में पापियों से गुप्त ही रखना चाहिए। हे तपोधन! मैं साधकों को सिद्धि प्रदान हेतु सदा जैगीषव्येश्वर लिंग में वास करूंगा।

हे महाभाग! जैगीषव्य! मैं एक बर और देता हूँ तुम्हारे स्तोत्र के हेतु। वह यह कि यह 'स्तोत्र' परम योग सिद्धि करने वाला, महा पाप विदारक, परम पुण्य की वृद्धि करने वाला, महाभय का नाश करने वाला तथा परम भक्ति को देने वाला होगा। इस स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्य को कभी कुछ असाध्य न होगा। प्रयत्न कर इसका जप करना चाहिये।

भगवान् स्मरारि ने प्रसन्न हो इस भाँति जैगीषव्य ऋषि का वरदान दे कर उसी समय अन्य क्षेत्र से आये ब्राह्मणों की ओर देखा।

श्री स्कन्द जी ने आगे कहा कि जो बुद्धिमान् इस अतुलनीय आख्यान को सुनेंगे वह सब निष्पाप होंगे वह किसी प्रकार के उपद्रव से कभी पीड़ित न होंगे।

इस भाँति श्री स्कन्द पुराणान्तर्गत चतुर्थ काशी खण्ड के ६३ वें अध्याय में वर्णित ज्येष्ठेश्वर, जैगीषव्येश्वर आख्यान का भाषा में अनुवाद किया गया।

अध्याय ६४

ब्राह्मणों की सभा में श्री विश्वनाथ द्वारा काशी का माहात्म्य और रहस्य वर्णन

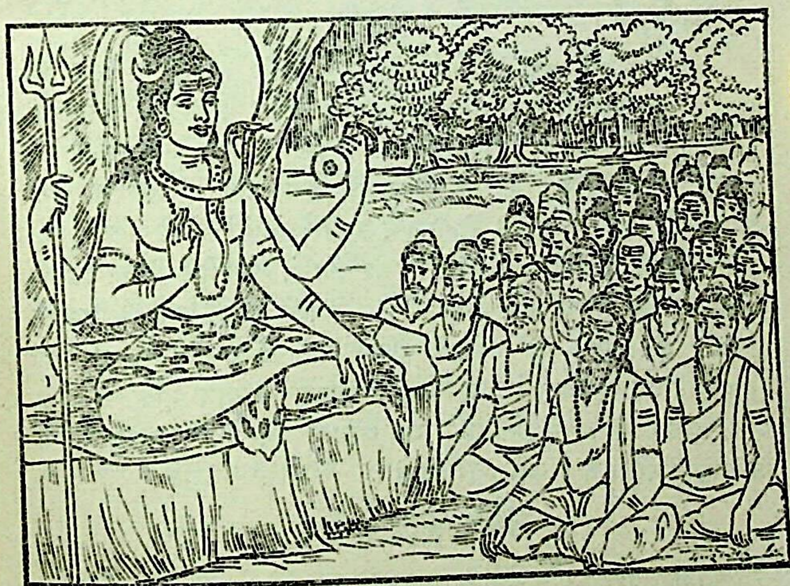
अगस्त्य ऋषि ने आगे का प्रसंग पूछते हुए कहा कि हे षडानन ! कृपा पूर्वक यह बताएं कि भगवान् विश्वनाथ ने वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों को कौन उपदेश दिया ? साथ ही यह भी बताने की कृपा करें कि उस क्षेत्र में और कौन कौन से लिंग प्रकट हुए ? वहाँ और कौन सी आश्चर्य जनक घटना घटी है !

श्रीस्कन्द जी ने कहा कि हे अगस्त्य ! जब ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भगवान् विश्वनाथ मन्दराचल चले गये थे उस समय 'क्षेत्रसन्यासधारी' ब्राह्मणलोग निराश्रय हो उस महा क्षेत्र में रहकर प्रतिग्रह न लेने का संकल्प कर बैठे वह भूमि को डण्डे के ऊपरी या निचले भाग से खोद कर सर्व क्षेत्र में कन्द आदि उपजाकर उससे तपस्यापूर्ण जीवन बिता रहे थे। इस भाँति उस भूमि पर 'देवखात' नामक एक पोखरी बन गयी। उसके तीर पर चारों ओर ब्राह्मण लोग शिव लिंग स्थापित कर भगवान् शंकर की आराधना करने लगे। वह नित्य भस्म व रुद्राक्ष धारण कर सदा शिवलिंग की पूजा तथा शतरुद्रीय जप करते हुवे समय व्यतीत करते रहे।

तपके कारण क्षीण काय ५,००० तपस्वी ब्राह्मणों ने जब भगवान् के आगमन की सूचना पाई तो वे अत्यन्त हर्षित हो अपने 'दण्डखात' तीर्थ से ज्येष्ठ स्थान पर पहुँचे; मन्दाकिनी तीर्थ से पाशुपत व्रती, एक मेव शिव पूजा में तत्पर १०,००० हंसतीर्थ से १०,३००; श्री दुर्वासातीर्थ से १,२००; मत्स्योदरी तीर्थ से ६,०००; कपाल मोचन तीर्थ से ७००; ऋणमोचन से १,३००, वैतरणी

तीर्थ से ५,०००; महाराजा पृथु द्वारा खुदवाये 'पृथुतीर्थ से १,३०० 'मेनका-कुण्ड' से २००; उर्वशीकुण्ड से १,२००; ऐरावत कुण्ड से ३००; गन्धर्व-कुण्ड से ७००; अप्सराकुण्ड से २००; वृषमध्वज तीर्थ से ३६०, यक्षिणी कुण्ड से १,३००; लक्ष्मी कुण्ड से १,६००; पिशाचमोचन से ७,०००; पितृकुण्ड से १०० से अधिक; ध्रुवतीर्थ से ६००; मानसरोवर से ५००; वासुकी ह्रद से १०,०००; सीता कुण्ड से ८००; गौतमकुण्ड से ९००; दुर्गाकुण्ड से १,१००; परमानन्द भगवान् काशीनाथ उपमाति महादेव का दर्शन करने के लिए आये।

श्री स्कन्द जी ने आगे कहा कि हे घटोद्भव। इसी प्रकार से असी से लेकर वरणा संगमेश्वर पर्यन्त गंगा के तीर वासो १८,५५० ब्राह्मण अपने हाथों में धुला अक्षत, पुष्प फल, सुगंधी, माला आदि लिये तथा जय-जयकार करते, मंगल स्तोत्रों का जप करते प्रणाम किये हुए वहाँ पहुँचे।



भगवान विश्वनाथ ने इन सबको अभय देते हुए सबका कुशल पूछा।

ब्राह्मणों ने हाथ जोड़ हुए कहा कि हे नाथ ! आपकी काशीपुरी में निवास करने वालों का सदा' कुशल ही रहता है। जिसके स्वरूप को सब नहीं जान सके उसे आज हम साक्षात् देख रहे हैं। यह हमारा परम सौभाग्य है। आपके क्षेत्र से बाहर रहना ही अमंगल माना जाता है क्योंकि मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध होता है। जो काशी का विरोध करते हैं उनसे चौदहो भुवन उनके विपरीत हो जाता है। हे शम्भो ! जिनके हृदय में 'काशी' वास करती है उन्हे संसार रूपी सर्प कभी नहीं डंसता।

काशी

'काशी' यह दो अक्षरात्मक नाम-मंत्र 'गर्भ' रक्षा की मणि है। जिसके कण्ठ प्रदेश में यह मंत्र वास करता है उसकी अकुशलता कैसी ! जो कोई, मंत्रमय 'काशी' नामामृत का पान करता रहता है वह जरावस्था को त्याग कर अमृत हो जाता है। जिसने 'काशी' सुना उसे पुनः कभी गर्भ संबंधी वार्ता सुनने को नहीं मिलती।

ब्राह्मणों ने आगे कहा कि हे चन्द्रशेखर। जिसके मस्तक पर काशी की धूलि का एक कण भी किसी भाँति पड़ जाए तो मानो वह मस्तक 'चन्द्रकला' से सुशोभित हो जाता है। जिन लोगों ने एक बार भी इस आनन्दवन क्षेत्र का दर्शन कर लिया, वह न तो कभी जन्म लेता है और न कभी श्मशान को ही देखता है। जो मनुष्य उठते-बैठते-सोते-जागते किसी भी अवस्था में हो 'काशी' का जप करने में लव-लीन हो जाता है। जिसने इन दो अक्षरों को बीज रूप से अपने हृदय में बैठा लिया है उसके कर्मबीज समाप्त हो जाते हैं। काशी का जय-गान करने वाले के सन्मुख 'मुक्ति' प्रकाशित रहती है। हे प्रभो ! यह 'काशी' साक्षात् 'कल्याण मूर्ति' है और आप 'कल्याण स्वरूप' हैं ही, गंगा भी कल्याण मयी है। यह इस क्षेत्र के अतिरिक्त तीनों लोक में कहीं नहीं मिलते।

संसार समुद्र से पार

भगवान विश्वनाथ ब्राह्मणों के भक्ति-युक्त वचन सुनकर अत्यंत संतुष्ट हुए और आगे कहने लगे कि इस क्षेत्र के प्रति आपमें इतनी भक्ति है। आप सब

धन्य हैं। इस क्षेत्र की भक्ति के कारण ही प्राणि तमोगुण व रजोगुण से रहित सत्वगुण अनुष्ठित हैं। फलतः आप सब संसार रूपी समुद्र के पार पहुँच गये हैं। वाराणसी के भक्त हमारे भक्त होते हैं तथा भगवती मोक्ष-लक्ष्मी की कृपा दृष्टि पड़ने से हम जीवन्मुक्त हो जाते हैं। जो कोई काशी के किसी जीव से विरोध रखता है वह पृथ्वी समेत मेरा विरोधी हो जाता है।

जो कोई काशी की महिमा सुनकर उसका समर्थन करता है वह संपूर्ण ब्राह्मण मात्र से अनुमोदित होते हैं। 'आनन्दवन-वासी' शुद्ध हो मेरे हृदय में वास करते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्र में रहकर मेरी भक्ति में लीन रह मेरा चिह्न धारण करते हैं तो उन्हीं को मैं उपदेश देता हूँ। जिनके हृदय में यह 'काशी' प्रकाशित रहती है वे मेरे समक्ष मोक्ष-लक्ष्मी द्वारा 'जयमाल' धारण कर प्रकाशमान हो जाते हैं।

जिन लोगों को यह मोक्ष-लक्ष्मी स्वरूपा 'काशी' प्रिय नहीं होती फिर भी 'स्वर्गश्री' प्राप्ति की अभिलाषा करते हों वे सब पतित होते हैं। हे ब्राह्मण गणों! काशी की आकांक्षा करने वालों के आगे चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) किंकर्त्तव्य से खड़े रहते हैं।

दावानल के समान मैं काशीमें वास करता हूँ। भगवानने आगे कहा कि मैं काशी वासियों के समस्त कर्म बीजों को-'दावानल' के समान प्रज्वलित रहकर भस्म कर डालता हूँ—वे सब पुनः कभी अंकुरित नहीं हो पाते। इस काशी में रहने वालों को प्रयास कर नित्य मेरी पूजा करनी चाहिये फलतः कलि और काल पर विजय प्राप्त कर मुक्तिरूपा स्त्री के साथ विहार किया जा सकता है, काशी में आकर मेरा जो पूजन नहीं करता उसके हाथ से मोक्ष—लक्ष्मी पुनः लौट जाती हैं। मेरा चिह्न धारण कर हे ब्राह्मणो! आप सब इस काशी में रहते हैं। अतः आप धन्य हैं। आपके चित्त से न मैं दूर होता हूँ और न काशी ही। आप सब इच्छानुसार वर माँगो।

ब्राह्मणों ने वर माँगा

भगवान् महेश्वर का इस भाँति वचन सुनकर ब्राह्मणों ने वर माँगते हुए कहा कि हे उमापते! महेश! संसार ताप-नाशक! सर्वज्ञ! हम यह

मांगते हैं कि अब आप काशी कभी न छोड़ें। इस काशी में ब्राह्मणों द्वारा 'मोक्ष' माँगने के बाद उसमें बाधक किसी का शाप न लगे। आपके दोनो चरण कमल में हम लोगों की 'अचल-भक्ति बनी रहे। जब तक हम लोग जीवित रहें तब तक काशी में ही वास करें। हमें यही वर चाहिए और हे अन्धकान्तक। एक वर और देने की कृपा करें कि हम लोगों ने जहाँ आपको प्रति मूर्ति रूप जिस लिंग की स्थापना की है, उनमें आप वास करें।

विश्वनाथ द्वारा ब्राह्मणों को वरदान

ब्रह्मणों की माँग सुनकर भगवान् विश्वनाथ ने कहा कि यह सब 'वर' दिया साथ ही एक वर मैं अपनी ओर से यह देता हूँ कि काशी से आप लोगों को ज्ञान की प्राप्ति होगी। यहा 'मुक्ति' चाहने वालों को नित्य उत्तर-वाहिनी गंगा में स्नान, मेरी पूजा, इन्द्रियों को वश में रखना, यथा—शक्ति दान तथा सभी जीव पर सदा दया करते रहना चाहिए। काशी-क्षेत्रवासियों के लिए यह कर्म परम रहस्य का है। काशीवासियों को अपनी बुद्धि को दूसरों के हित-कर्म में लगाए रखना चाहिये तथा घबराहट उत्पन्न करने वाली बातों को नहीं कहना चाहिए। इन्द्रिय-विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाले कभी भी पाप-कर्म न करें। क्योंकि यहाँ किया हुआ पुण्य और पाप दोनों अक्षय हो हो जाते हैं।

काशी में पाप करने से ३० हजार वर्ष पिशाच योनि में

भगवान् ने आगे कहा कि अन्य स्थानों पर किया गया पाप काशी में आने से नष्ट हो जाता है। काशी में किया गया पाप अन्तर्गृह में निवास करने पर नष्ट होता है। अन्तर्गृह में किये हुए पाप-कर्म पिशाच योनि नरक में वास दिलाता है। यदि बाहर से पिशाच जन्म या नरक की प्राप्ति हुई हो तो वह काशी अन्तर्गृह में निवास करने पर निश्चित रूप से छुटकारा पा जाता है। हे ब्राह्मण गणों। काशी में किया गया पाप करोड़ कल्प में भी नष्ट नहीं होता। एक-एक पाप दण्ड कह करके ३० हजार वर्षों तक पिशाच योनि में रह कर भोग भोगना पड़ता है। जो कोई काशी में रहकर पातक क॰

में लीन रहता है वह ३० हजार वर्ष पिशाच योनि का क्रम से भोग, भुगत कर पुनः काशी निवासी बन अति श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति कर अत्युत्तम मोक्ष की प्राप्ति करता है। हे द्विजसत्तम! जो लोग इस काशी में अत्यधिक दुष्कर्म करते हैं और काशी से बाहर मरते हैं उनकी जो गति होती है उसका वर्णन सुनाता हूँ ध्यान से सुनिये।

काशी में दुष्ट कर्म करने वाले

ऐसे पातकियों को हमारे विकट-मूर्ति 'यम-गण' सर्वप्रथम तेल के कराहे में छोड़कर टेघराते हैं। वर्षा काल में भारी जल राशि में डुबा देते हैं। यम-गण शीत काल में हिमालय पर ले जाकर उन्हें भूखे प्यासे रखते हैं। गर्मियों में ऐसे पातकियों को मरुस्थल (रेगिस्तान) में ले जाकर सूर्य के तेज में तपाते हुए बिना जल के रखते हैं।

मेरे 'उग्रगण' सभी भाँति उन पापियों को बड़ी पीड़ा द्वारा कष्ट पहुँचाते हैं। अन्त में पुनः काशी में लाकर उन्हें 'कालराज' (काल भैरव) के समक्ष उपस्थित करते हैं। बिनावस्त्र का भूख प्यास से अत्यन्त दुःखी, पीठ और पेट सटा हुआ देखकर 'कालराज' उन पापियों को कष्ट देने के लिए रुद्र-पिशाचों को सौंप देते हैं। ये 'रुद्रगण' उसे भूख-प्यास की बड़ी पीड़ा देते हैं, कभी-कभी रक्त मिश्रित भोजन उन्हें दे देते हैं। इस भांति ३० हजार वर्ष पर्यन्त दुःखित रहना पड़ता है। ये सब पापी श्मशान के स्तम्भ से गले में फासी लगे बंधे रहते हैं। बूंद भर जल के लिए तरसते हैं। पश्चात् 'श्री कालभैरव' का दर्शन कर पुनः यहाँ जन्म लेते हैं तत्पश्चात् सब मेरी आज्ञा से मुक्त हो जाते हैं। बड़े फलों की अभिलाषा रखने वालों को मनसा-वाचा और कर्म से कभी पाप नहीं करना चाहिए। सदा पवित्र मार्ग का अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर होता है।

भगवान् ने आगे कहा कि हे भू-देवों अविमुक्त क्षेत्र में मरने पर कोई भी पापी नरक भोग नहीं भोगता अपितु मेरी कृपा से वह परमगति को प्राप्त करता है। यहाँ पर जो भक्त अनशन व्रत करता हुआ सैकड़ों वर्ष व्यतीत

करता हो उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इस पापमय मनुष्य जन्म को सर्वथा विनश्वर विचार कर सदा अविमुक्त-क्षेत्र का ही सेवन करना चाहिए।

काशी प्रवेश से पाप का नाश

कलियुग में प्राणियों का प्रायश्चित्त स्थान सर्वपापनाशक 'वाराणसीपुरी' के अतिरिक्त अन्य कोई समझमें नहीं आता। हजारों वर्षों में संचित पाप 'काशी' में प्रवेश करते ही समाप्त हो जाते है। 'योगीजन' हजारों वर्ष तक योगाभ्यास करने पर जिस 'मुक्ति' को प्राप्त करते हैं वह 'मुक्ति' काशी में मरने मात्र से अनायास मिल जाती है। काशी में तिर्यग योनि वाले भी वास करते हैं। वे सभी कालानुसार मरने पर परम गति को प्राप्त करते हैं। जो मूर्ख अज्ञानान्धकार को धारण इस 'अविमुक्त-क्षेत्र' की सेवा नहीं करते वे बारम्बार मल-मूत्र और वीर्य के कीच में सड़ा करते हैं अर्थात् जन्म लेते रहते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान् काशी में लिंग 'स्थापित करता है तो उसका सैकड़ों करोड़ कल्प बीतने पर भी पुनः जन्म नहीं होता है।

समय आने पर ग्रह, नक्षत्र व तारा का भी पतन हो जाता है परन्तु जो काशी में मरते हैं उनका संसार में पतन कभी नहीं होता। जो व्यक्ति ब्रह्म-हत्या करने के बाद संयमी होकर काशी में प्राण त्याग करता है तो वह भी 'मुक्ति' को प्राप्त कर लेता है।

हे ब्राह्मण लोग! पतिव्रता स्त्रियाँ मेरी भक्ति करते हुए काशी में प्राण त्यागती हैं वे भी परमपद को प्राप्त करती हैं।

मृत्यु के समय 'काशी-वासी' को मैं 'तारक-ब्रह्म' का उपदेश देता हूँ। फलतः वह देही ब्रह्म-मय हो जाता है। मेरा भक्त मेरे में मन लगाकर यहाँ जो कुछ करता है और उसे मुझे ही अर्पित कर इस प्रकार वह जो मोक्ष यहाँ सहज तरीके में उपलब्ध करता है वैसा तरीका अन्यत्र नहीं। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह मृत्यु को निश्चय माने और संसार की गति को दुःख का स्वरूप, सभी आगंतुक को 'चल' समझकर 'काशी' में ही रहे।

जो मनुष्य तन से, मन से और वचन से काशी का आश्रय ग्रहण करता

है, वह यहाँ पवित्र बुद्धि वाला होकर रहता है उसको 'मोक्षलक्ष्मी' स्वयं आकर घेरती है।

न्याय से उपार्जित धन देकर जो कोई किसी एक व्यक्ति को भी प्रसन्न करता है। वह त्रैलोक्य को सन्तुष्ट करने का फल अर्जित कर लेता है। हे ब्राह्मणों! जो पुण्यवान् काशी-निवासी को सन्तुष्ट करता है उसे मैं चारो पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) से सदैव प्रसन्न किए रहता हूँ।

भगवान् विश्वनाथ ने आगे कहा कि काशी-राज राजर्षि दिवोदास ने भी धर्म पूर्वक रहकर इस काशी का पालन करते हुए 'सशरीर' मेरे पद को प्राप्त कर लिया है। उन्हे अब पुनः जन्म नहीं लेना पड़ेगा। काशी में एक ही जन्म में योग सिद्धि, ज्ञान प्राप्ति और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। अतएव कभी मुक्त को छोड़कर तपस्या करने के लिए किसी अन्य तपो भूमि में जाने की आवश्यकता नहीं हैं।

मोक्ष को अन्यन्त दुर्लभ तथा संसार को भारी भयानक समझकर अपने पैरों को पत्थर से तोड़कर काशी में वास करे और अपने मृत्यु अर्थात् काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब कोई मूर्खता वश काशी से बाहर जाते हैं तब मेरे गण भूतादि ताली बजाकर हँसते है। अन्ततः तात्पर्य इतने कहने का यही है कि परमोत्तम 'काशी-पुरी' को पाकर यहाँ से जाने की किसी को इच्छा नहीं होनी चाहिये।

अन्य क्षेत्र में 'महादान' करने से जो फल प्राप्त होता है वह इस काशी में एक कौड़ी के दान करने से प्राप्त होता है। काशी में तपस्या करने की अपेक्षा जो लिंग-पूजन करता है वही श्रेष्ठ माना जाता है। दूसरे तीर्थों में करोड़ गौ का दान करने से जितना फल प्राप्त होता है, वह काशी में मात्र एक दिन वास करने से प्राप्त हो जाता है। अन्यत्र करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने से जितना फल प्राप्त होता है उतना फल काशी में एक ब्राह्मण को भोजन कराने से अर्जित होता है। सूर्यग्रहण के समय 'कुरुक्षेत्र' में तुला दान से जितने फल की प्राप्ति होती है उतना उस समय काशीमें एक मुट्ठी अन्न दान करने से प्राप्त होता है। काशी में मेरी 'परमज्योति' पाताल से लेकर यहाँ तक है। तीनों

लोकों में जो लिंग हैं वे अनन्त लिंग यहाँ हैं। पृथ्वी के प्रांत भाग में रहकर जो लोग मेरे 'अविमुक्त-लिंग' का स्मरण करते हैं उनके बड़े से बड़े पापों का निवारण हो जाता है।

हे ब्राह्मण गणो ! जो लोग काशी में मेरा दर्शन, स्पर्शन तथा पूजन करते हैं वे सब 'तारक-मन्त्र' प्राप्त कर पापों से मुक्त होते हैं। और पुनः जन्म नहीं लेते। जो मनुष्य यहाँ पर मेरी अर्चना करता है और वह अन्यत्र जाकर मरता है तो दूसरे जन्म में पुनः मुझे प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

इस भाँति वरदान देते हुए भगवान् विश्वनाथ वहीं पर ब्राह्मणों के समक्ष अन्तर्धान हो गये। उसके पश्चात् ब्राह्मण भी भगवान् भवानी-पति का प्रत्यक्ष दर्शन कर परम प्रसन्न हो अपने-अपने स्थान पर चले गये। सभी ब्राह्मण 'भगवान् विश्वनाथ' के वचन का अक्षरशः पालन करते हुए अन्य कर्मों को त्याग कर 'शिव-लिंगों' का ही पूजन करने लगे।

श्री स्कन्द जी ने आगे कहा कि हे महाभाग अगस्त्य ! जो यह आख्यान पढ़ेगा या सुनेगा, वह समस्त पातकों से छूट कर अन्त में 'शिव-लोक' में पूजित होता है।

इस प्रकार 'श्री स्कन्द पुराणान्तर्गत चतुर्थ काशी खण्ड' में वर्णित क्षेत्र-रहस्य नामक ६४ वें अध्याय का भाषा में अनुवाद किया गया।

(आगे की कथा अगले अंक में)

देव बल बढ़ायें

जब समाज में धर्म का प्राबल्य रहता है तब देवता लोग भी 'बली' रहते हैं। परन्तु जब समाज अधर्म-कर्म की ओर अग्रसर हो जाता है तब असुरों को बल प्राप्त होता है और देवता अपने में निर्बलता का अनुभव करते हैं।

कलियुग में तो जितना पाप-कर्म होता है उसे 'युगधर्म' की संज्ञा दिया जाता है। ठीक है 'युगधर्म' है परन्तु क्या ऐसा समझ यदि सब पाप-कर्म में लीन होंगे तो फिर सृष्टि का क्या होगा। महाभारत से भी भायनक कोई महान काण्ड होगा। सन् १९४५ में हिरोशिमा (जापान) में एक 'एटम' छूटने का भयानक परिणाम, कोरिया व वियतानाम के परिणामों से भी यदि हमने शिक्षा ग्रहण नहीं किया तो फिर हमारी रक्षा भगवान् भी नहीं करेंगे।

बात सत्य है जब हम भगवान् की अपेक्षा नहीं करेंगे तो वह हमारी दशा और हमारी स्थिति में क्यों सहायक बनेंगे। आज स्थिति इतनी बिगड़ गयी है कि किसे रक्षक माना जाय और किसे भक्षक, इसका निर्णय बड़े-बड़े बुद्धिमान भी करने में अक्षम हो रहे हैं अर्थ, काम और पद के लोभवश।

आज जिसे देखें वह यह उपदेश झाड़ रहा है कि धर्म-कर्म करना ढोंग है, बकवास है, इसमें समय और धन व्यय करना मूर्खता है, महाभारत हुआ ही नहीं, 'राम' विष्णु के अवतार ही नहीं हैं आदि।

हम इन वक्ताओं से विनम्र निवेदन करेंगे कि अपने लोभ के कारण सारे मानव जाति को क्यों भाड़ में झोंकने का उप्रकम किया जा रहा है। ऐसी बातों से नयी पीढ़ी के लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं हो रहा है कि बिना 'धर्म-कर्म' के पथ का अनुसरण किए एकता की बात निर्मूल है। आज लोग सामाजिक एकता की तो बात करते हैं, पर वह एक दम बात ही होती है क्रिया में वह शून्य रहती है।

जिसे देखें वह वेद, शास्त्र, पुराण आदि सद्ग्रंथकों की आलोचना करते नहीं अघाते। परन्तु ऐसे लोगों ने वेद शास्त्र आदि का कभी दर्शन नहीं किया होता। मात्र ऐसे लोगों के बहकाने में आकर अपना सर्वस्वनाश कर राष्ट्रकी एकता को बिखेरते, उसे शक्तिहीन बनाकर पराङ्मुखी बनाते हैं।

इस मृत्युलोक में 'वेद' के सिवाय प्राणि का अन्य कोई रक्षक या पोषक नहीं हैं। वेद के रक्षण का भार व उत्तरदायित्व ब्राह्मण-वर्ग पर विशेष रूप से है क्योंकि उसमें प्रकृति रूप से वह शक्ति रहती है जिसके द्वारा वह 'वेद' को आत्मसात कर सकता है। परन्तु आज का 'ब्राह्मण' अपने ब्राह्मण्य को गवा देने में ही अपना पुरुषार्थ समझता है।

आज ब्राह्मणों पर अधर्म के बादल मण्डरा रहे हैं। उसे अपने स्वधर्म पर आस्था एवं विश्वास नहीं रहा जो थोड़े हैं भी वह उपहास के पात्र बन रहे हैं। आज ब्राह्मणों को अपने वेदाध्ययन में प्रवृत्त होना पड़ेगा बिना इसके उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

कम से कम अन्यत्र छोड़ दिया जाय पर देव-भूमि भारत में आज भी कुछ कर पाना सम्भव है। उस पर से उसकी आत्मा 'काशी' में तो पूर्ण सम्भव है। पहले इस काशी में हजारों अन्नसत्र (क्षेत्र) चलते थे। आज उसे चलाने वाले तो हैं पर उनकी शक्ति छीन ली गयी है, वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये हैं। उन क्षेत्रों में लोग भोजन कर निश्चिन्त भाव से वेद शास्त्रादि का अध्ययन मनन करते रहे। आज उसका स्थान होटल, रेस्टुरेंट, आदि ने ले लिया है जिसमें लोग घर की पूंजी गवाँ कर शुद्ध मूर्ख बन रहे हैं। उलझा समाज बड़े ही विकट परिस्थिति में है। उसे काशी से ही प्रकाश उपलब्धि हो सकती है। अखण्ड दीप से ही प्रकाश प्रकाशित होता है यह बात ध्रुव सत्य है।

आज काशी का वह 'अखण्डदीप' काशीराज के रूप में प्रज्वलित है। आवश्यकता है उस दीप में अपने स्नेहरूपी घृत को डालने की तथा उसके लव से अपने मानस दीप को प्रज्वलित कर अपने को प्रकाशमान बनाने की काशीराज 'ब्राह्मणों' में ब्राह्मण्य लाने के लिए जो-जो कार्य कर रहे हैं उसमें सभी लोग हाथ बटांवे और काशी में 'ब्राह्मण' की जड़ को सुदृढ़ बनाने में तत्पर हों जिसमें ब्राह्मण 'ब्राह्मण्य' का आचरण करे वह देव-बल को बढ़ाने में सहायक हो और सारे देव भूमि भारत को पुनः दैवी शक्ति से सम्पन्न करे।

ज्येष्ठेश्वर

भगवान् ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर 'सप्तसागर' के उत्तर ओर भूतभैरव के दक्षिण बड़ा ही रमणीक है। यहीं बगल में भगवती ज्येष्ठा गौरी का मन्दिर है। पवनेश्वर आदि अनेक शिव लिंग इनके आगे-पीछे बिराज रहे हैं। यहाँ से उत्तर ओर ईश्वरगंगी पर्यन्त तथा मन्दाकिनी के पश्चिमी तट पर स्थित बड़े गणेश से 'तक्षकेश्वर' (झण्डातले औघड़नाथ की तकिया) तक 'ज्येष्ठ-क्षेत्र' आज भी काशी में विशाल सरपट मैदान सा लक्षित होता है।

श्री जैगीषव्य ऋषि की गुफा

दयानन्द महाविद्यालय के उत्तर बघवावीर के पश्चिम 'पाताल-पुरी मठ' में श्री जैगीषव्य महर्षि की गुफा आज भी विद्यमान है। इस गुफा में ३५ वर्ष पूर्व लेखक कुछ दूर तक एक बार गया है पर आगे सर्प आदि के भय होने के कारण १५-२० हाथ से आगे नहीं बढ़ सका। इधर १०-१५ वर्ष से वह भी ७ ८ फुट के बाद बन्द कर दिया गया है। गुफा के द्वार का आज भी दर्शन होता है। इस मठ के उत्तर भगवान श्री जैगीषव्येश्वर का बड़ा लिंग विराजमान है जिन्हे आज 'जागेश्वर महादेव' के नाम से जाना जाता है। इसी मठ के पूर्व में 'बघवाबीर' (सिंह रूप में) चबूतरे पर सुशोभित हैं। इसका वर्णन अगले अंक के ६५ वें अध्याय में करूंगा।

वृषभध्वजेश्वर-कपिलधारा तीर्थ

यह स्थान काशी पंचक्रोशी यात्रा का अन्तिम विश्राम स्थल कपिलधारा नाम से विख्यात है। इसी नाम से उस ग्राम का नाम भी पड़ा है। तीर्थ पक्का है। अब यह छोटा हो गया है परन्तु पहले यह विशाल था। तीर्थ के ऊपर अधिक उँचाई पर भगवान् 'वृषभध्वजेश्वर' विराजमान हैं।

माधव और तीर्थ के स्थान

आदिकेशव, ज्ञानकेशव, ताक्ष्यं केशव—वरुणा संगम पर

नारद केशव, प्रह्लाद केशव—प्रह्लाद घाट पर

भृगु केशव—त्रिलोचन के ईषान कोण में गोलाघाट पर।

नरनारायण—माथाघाट बद्रीनाथ के नाम से विख्यात है।

यज्ञवाराह केशव—नयामहादेव, ११/२९।

विदार नरसिंह—प्रह्लादघाट पर म. सं. ए. १०/८२ में।

लक्ष्मी नृसिंह, शेषमाधव—राजमन्दिर हनुमान जी के मन्दिर में।

हयग्रीवकेशव—भदैनी पर माँ आनन्दमयी अस्पताल के समीप।

भीष्मकेशव—वृद्धकाल की दालान में, म. सं. के० ५२/३६।

पशुपतिश्वर—म.सं.सी. के १३/६६ पशुपतिश्वर महाल प्रसिद्ध है।

स्कन्दतीर्थ-मणिकर्णिका पर तारकेश्वर के पास गंगा में विलीन।

विष्णु तीर्थ--मणिकर्णिक-ललिताघाट के बीच लुप्त है।

भागीरथीश्वर—ब्रह्मनाल में पं० मुक्तानन्द चौबे के मकान में

नाभितीर्थ—ब्रह्मनाल में लुप्त है।

वैकुण्ठमाधव सिंधियाघाट के ऊपर म. सं. के. ७/१६५ में,

वीर माधव---आत्मवीरेश्व के द्वार पर बाहरी दीवाल के आखे में

कालमाधव---काठकी हवेली के पीछे म. सं. के. ३०/४ में

महाबलि नृसिंह---मत्स्योदरी पर कामेश्वर मन्दिर में।

अत्युग्रनरसिंह-गोमठ में कलशेश्वर के पश्चिम म.सं.सी.के. ८/२१

ज्वालामाली नृसिंह – कपिलधारा के समीप पंचकोशी मार्ग पर
कोटवा ग्राम में।

त्रिविक्रम माधव ---त्रिलोचनेश्वर के मन्दिर में।

बलिवामन—आदिकेशव के समीप उत्तर घेरे में।

ताम्रवाराह—नीलकंठ महादेव के पास म. सं. सी. के. ३३/५७ में

धरणी वाराह---दशाश्वमेघघाट म.सं डी. १७/१११ क्षोणीवाराह
नाम से विख्यात हैं।

॥ श्री शंकर पातुमाम् ॥

हिमागार शिखरस्थ वटशीत छाया।
परमरम्य जनशून्य कैलाश भाथा॥
महाग्रीव गरलांग उसपर सुहाता।
सुवर्णांग पर भस्म का रंग भाता॥
त्रिलोचन जगत तापमोचन हैं स्वामी।
नमो विश्वनाथं नमामि नमामि॥
कभी नृत्य करते शिवासंग छम-छम।
बजे घुंघरू चीमटा हाथ चम-चम॥
मजीरे करें गत त्रिलक्षण ही किम-किम।
उठे साथमें शब्द डमरू का डिम-डिम॥
मिले ताल में ताल करताल बाजे।
सभा और प्रभा देख गन्धर्व लाजे॥
धरे हाथ माथे लगाते सुफेरे।
सदा शिव-शिवा बसो चित्त मेरे॥
नहीं द्रव्य पाई न कोई सहाई।
भ्रमत भ्रांत होकर नहीं शान्ति पाई॥
रहूँ मैं सुसेवक विभो दुःखत्रता।
यही हूँ जगतपति निवेदन मनाता॥
क्षमाशील सन्तोषपद भक्तिदाता।
यही है विनय प्रभु आपको हूं सुनाता॥

———

अगला आकर्षण

व्याघ्रेश्वर और बघवाबीर

नागकूँआ—शैलेश्वर-शैलपुत्री

रत्नेश्वर—गजासुर वध

कृत्तिवासेश्वर और हरतीर्थ

अध्याय ५९ व ६० आठ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम प्रकाशित हो चुका है। प्रति अप्राप्य है, उसकी प्राप्ति के लिए ५ रु० जमा कर स्थायी ग्राहक बनें। उपलब्ध प्रतियाँ ले लें और शेष को सुरक्षित करा लें। अप्राप्य प्रतियाँ पुनः प्रकाशित होने पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था है। उक्त अंक "पंचगंगा और बिन्दुमाधव की महिमा" का है।

—व्यवस्थापक